गुरुत्तं

भाग-I

प्रवचनकार

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी

आचार्य श्री १०८ वसुनंदी जी मुनिराज

प्रकाशक

गजेन्द्र ग्रन्थमाला

कृति : गुरुत्तं भाग-1

प्रवचनकार : आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

संपादन : आर्यिका 105 श्री वर्धस्वनंदनी

पुण्यार्जक : सकल दिगम्बर जैन समाज
बैंक एन्कलेव, लक्ष्मी नगर, दिल्ली

प्राप्ति स्थान: निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला, बौलखेड़ा
जैन साहित्य सदन, श्री दि. जैन लाल मन्दिर, दिल्ली
गजेन्द्र ग्रन्थमाला, H2/16, II फ्लोर, अंसारी रोड,
दरिया गंज, नई दिल्ली-110002 मो. 9810035356

संस्करण : द्वितीय

प्रतियाँ : 1000, सन् 2018

मूल्य : स्वाध्याय रुपये

मुद्रक : एन.एस. एन्टरप्राईजिज
H2/16, II फ्लोर, अंसारी रोड,
दरिया गंज, नई दिल्ली-110002
दूरभाष : 9811725356, 9810035356
e-mail : swaneeraj@rediffmail.com

पुरोवाक्

आत्मा पर छायी शाश्वत निशा के तमाछिन्न वातावरण में यह जीव अनादिकाल से इस संसार में परिभ्रमण कर रहा है और वह विभावरी भी ऐसी जिसमें सुधांशु का भी पता नहीं। शुक्ल पक्ष का तो यहाँ नाम भी नहीं है। ऐसे में इस जीव को कितने दु:खों का निर्वहन करना पड़ता है। यदि प्रकाश न हो तो चलने में ठोकरें, कंटक जैसी असुविधाएँ तो स्वाभाविक सी हैं। ऐसे मार्ग पर प्रकाश का होना अथवा मार्ग को प्रकाशित करना अत्यावश्यक है। सम्यक् ज्ञान का प्रकाश जब तक चेतना के धरातल पर नहीं होता तब तक वह हेयोपादेय, कार्य अकार्य को जानने में असमर्थ होता है। सम्यक् ज्ञान के अभाव में जीव दुखोपार्जन ही करता है। आचार्य भगवन् श्री अमृतचंद स्वामी ''समयसार कलश'' में प्रतिपादित करते हैं-

अज्ञानात् मृग तृष्णिकां जलधिया धावंति पातु मृगा,
अज्ञानात्तमसि द्रवंति भुजगाध्यासेन रज्जौ जना:।
अज्ञानाच्च विकल्प चक्रकरणाद्वातोत्तरंगाधिव-
च्छुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्री भवन्त्याकुला:॥

जैसे संध्या के समय, जब थोड़ा-थोड़ा अंधेरा होने लगता है, तब रस्सी को साँप समझकर अज्ञान के कारण लोग भागने लगते हैं। जेठ के महीने में प्रचंड गर्मी है, लू चल रही है, सब तरफ त्राहि-त्राहि हो रही है तब प्यास से आकुल हरिण लू की किरणों को जल समझकर भागता है, दौड़ता जाता है, उसे पानी कहीं नहीं मिलता और वह प्यास का मारा अपने प्राण त्याग देता है। ऐसे ही सब प्राणी धर्म व अध्यात्म का ज्ञान न होने से संसार की बातों में सुख है-ऐसा समझकर यूँ ही दौड़-दौड़ कर मर जाते हैं। अत्: अज्ञान को दूर करना अनिवार्य है।

जिस प्रकार सूर्य का उदय संपूर्ण भूमंडल को प्रकाशित कर देता है उसी प्रकार सम्यक् ज्ञान का मिहिर चेतना के क्षितिज पर जैसे ही उदीयमान होता है तब निस्संदेह आत्मा का एक-एक प्रदेश प्रकाशित हो जाता है। सम्यग्ज्ञान के आलोक में प्राणी धर्म का अवलोकन समीचीन रूप से कर सकता है।

आलोकेन विना लोको मार्गं नालोकते यथा।
विनागमेन धर्मार्थी धर्माध्वंस जनस्तथा।।

जिस प्रकार प्रकाश के बिना लोक मार्ग को नहीं देखता है, उसी प्रकार धर्मेच्छुक मनुष्य आगम ज्ञान के बिना धर्म को नहीं जानता। शुभ में प्रवृत्ति और अशुभ से निवृत्ति कराने वाला ज्ञान कहलाता है। शुभ में हुई प्रवृत्ति और अशुभ से हुई निवृत्ति पुण्यार्जन एवं पाप क्षय का कारण है। आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद स्वामी ने प्रवचनसार में कहा है-''पुण्यफला अरिहंता'' अर्थात् पुण्य अरिहंत अवस्था को प्रदान करने में समर्थ है।

आचार्यों ने ज्ञान को कल्प वृक्ष, महारत्न, वैश्वानर, चिंतामणि रत्न आदि की उपमा दी है। कहा है ''किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या?'' जिस प्रकार कल्पलता से सभी इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति होती है उसी प्रकार ज्ञान भी प्राणी को पुण्य कोष से परिपूरित करने में समर्थ है। परंतु वह ज्ञान सम्यक् हो जिसके द्वारा चित्त का निरोध हो, पापों से छूट जाता हो, ऐसा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए जिससे कर्मों का क्षय हो जाए। ऐसा ज्ञान तीर्थंकर प्रसूत है उसे आचार्यों ने अपने शब्दों व अपनी भाषा में ढाल दिया। परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज ''विणय सारो'' में ज्ञान को निरूपित करते हैं-

विरज्जेज्जक्खभोयादो, वड्ढेज्ज धम्म-धी सया।
पट्टेज्ज सगप्पम्मि, जेण णाणं हु भासिदं॥

जिसके द्वारा सदा इंद्रिय विषयों से विरक्त भाव हो, धर्म बुद्धि की वृद्धि हो, नित्य आत्मा में प्रवृत्ति हो, जिनशासन में उसको ज्ञान कहा है।

जिस प्रकार शरीर का ध्यान प्राणियों द्वारा प्रति समय रखा जाता है उसी प्रकार आत्मा का ध्यान रखना भी प्राणी का कर्त्तव्य है। कुछ समय की शरीर की क्षुधा भी मानव को पीड़ित कर देती है तब आत्मा तो अनादिकालीन क्षुधा से व्याकुल है इसकी रक्षा करना तो प्राणी मात्र का कर्त्तव्य है। तभी तो आचार्य महाराज ने कहा ''आद हिदं कादव्वं'' आत्मा का हित करना चाहिए। प्रत्येक भव में साथ छोड़ने वाले शरीर पर तो मानव की दृष्टि जाती है परंतु अनादिकालीन बुभुक्षित चेतना पर करुणा दृष्टि नहीं है। आत्मा को ज्ञान के द्वारा पुष्ट किया जाता है। आचार्य भगवन् कहते हैं ''ज्ञानामृतं भोजनं।'' इस चेतना का भोजन ज्ञान रूपी अमृत है। शरीर की रक्षा हेतु शरीर को भोजन प्रदान करते हैं और चेतना की रक्षा हेतु उसको ज्ञान रूपी भोजन प्रदान करना आवश्यक है।

जिस प्रकार स्फुलिंग क्षणभर में संपूर्ण कपास ढेर को जलाकर नष्ट कर देता है उसी प्रकार ज्ञानी समस्त कर्मों का क्षय क्षणभर में कर सकता है। आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद स्वामी कहते हैं-

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसय सहस्स कोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण॥

अज्ञानी जीव भव सहस्र वर्षों तक, कोटि वर्षों तक तप करके जितना कर्म क्षय करता है, उतना कर्मक्षय ज्ञानी एक क्षण में त्रिगुप्ति से करता है।

अत: ऐसे सम्यक् ज्ञान का आलोक आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में हो उसके लिए आवश्यक है स्वाध्याय। चित्त रूपी सिंधु में उठ रही विकल्प की ऊर्मियों को शांत करने में एक जिनेंद्र भगवान की वाणी ही समर्थ है। वर्तमान काल में भव्यों के पुण्योदय से वह जिनवाणी गुरुओं के श्री मुख से प्रवाहित होती हुई उन्हें प्राप्त होती है।

प्रस्तुत पुस्तक **''गुरुत्तं''** परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज के मंगलमय, हितकारी प्रवचनों का संकलन है। ''गुरुत्तं'' यह प्राकृत भाषा का शब्द है जो दो शब्दों से मिलकर बना है गुरु व उत्तं। गुरु इसका अर्थ तो आप जानते ही हैं और उत्तं यानि कहा गया। गुरुत्तं अर्थात् गुरु के द्वारा कहा गया। अपार जन समूह को अत्यंत सरल सहज सुबोध शब्दों में उपदेश दे जो करुणा दृष्टि पूज्य गुरुदेव ने की उन्हीं उपदेशों को कल्याण की भावना से जन-जन तक पहुँचाने का यह लघु प्रयास है। इस पुस्तक के अन्तर्गत भक्ति, श्रद्धा जैसे विषय हैं तो वहीं ज्ञानावरणादि कर्मों के आस्रव सम सैद्धांतिक विषय भी समन्वित हैं। ''गाँठ खोल देखी नहीं'' ऐसा प्रवचन जो अपने वैभव का ज्ञान कराता है, वह वैभव जिसे अवलोकन करने मात्र का विलंब है वरना असीम वैभव से सुशोभित चेतना शिव महल में पहुँचने को आतुर है। चित्त की निर्मलता व परिणामों की विशुद्धि के लिए इस पुस्तक का अध्ययन सहज भाव से करें।

यदि इस पुस्तक के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से इसका अध्ययन करें। इस पुस्तक की पांडुलिपि आदि तैयार करने में संघस्थ त्यागीव्रती तथा मुद्रण-प्रकाशन में सहयोगी सभी धर्मस्नेही बंधुओं को पूज्य गुरुदेव का धर्मवृद्धि शुभाशीष। गुरुवर श्री का संयम पथ सदैव आलोकित रहे, शताधिक वर्षों तक यह वसुंधरा गुरुवर श्री के तप, ज्ञान, साधना से आलोकित रहे। पूज्य गुरुदेव के श्री चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु...

श्री शुभभिति माघ शुक्ल 15
वीर. नि. सं.: 2542
सोमवार, 22 फरवरी 2016

ॐ ह्रीं नमः
आर्यिका वर्धस्व नंदनी
श्री जंबू स्वामी तपोस्थली
बौलखेड़ा, राज.

अनुक्रमणिका

1.	ज्ञेय-हेय-उपादेय	9
2.	पुण्य के साथी	20
3	चारित्र निर्माण की पाठशाला	29
4.	दुष्ट संग से करो किनारा	39
5.	साता की विधि	47
6.	ज्ञानावरणी कर्मास्रव के कारण	53
7.	भ्रष्टाचार क्यों ?	69
8.	ज्ञान के शत्रु	84
9.	गांठ खोल देखी नहीं	92
10.	श्रद्धा-धर्म का मूल	103
11.	भावभीनी भक्ति	111
12.	सम्यक् श्रद्धा	118
13.	चित्त शुद्धि	130
14.	धर्म एवं विज्ञान	139
15.	जिन दर्शन	155

परम पूज्य
अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज
के मीठे प्रवचनों का संकलन ''गुरुत्तं-1''

ज्ञेय-हेय-उपादेय

जीवन में यदि शाश्वत सुखों की उपलब्धि करना है तो उसका सिर्फ एक ही उपाय है कि हम किसी प्रकार कर्मों से मुक्त हों, कर्मों का विमोचन ही शाश्वत सुखों की उपलब्धि का कारण है। कर्मों का विमोचन चाहे आज करें, चाहे कल, चाहे 100 वर्ष बाद अथवा हजार वर्ष बाद बिना कर्मों का विमोचन करे कभी भी कोई भी शाश्वत सुखों को उपलब्ध नहीं हो सकता। कर्मों का विमोचन करने का केवल एक ही तरीका है किन्तु बंध के अनंत। एक रस्सी में गाँठ अनेक प्रकार से लगायी जा सकती है किन्तु उसे खोलने का केवल एक उपाय है जब दोनों छोरों को जरा ढीला किया जाये तो वह गांठ अतिशीघ्र खुल जाती है उसी प्रकार कर्मों की गाँठ खोलने का भी एक ही तरीका है दूसरा है ही नहीं। वह तरीका है ''रत्नत्रय'' कर्मों की गाँठ चाहे छोटी हो या बड़ी, रत्नत्रय के बिना जीवन में किसी भी प्रकार की सफलता मिल ही नहीं सकती, गुलामी की जंजीरों से कोई व्यक्ति मुक्त नहीं हो सकता इसलिये कर्मों का विमोचन करना आवश्यक है। संसार में बहुत सारे ऐसे लोग हैं जो कहते हैं, हमें संसार में सुख ही सुख मिल रहा है फिर कर्मों का विमोचन क्यों? उन्हें जो सुख मिल रहा है, उनके जो अनुभव में आया है वह सुख क्षणिक हो सकता है, किन्तु वास्तव में जो शाश्वत सुख है वह कर्मों के विमोचन के बिना असंभव है। सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा अत्यावश्यक है, रत्नत्रय सदैव हमारे जीवन में रहना है। माता-पिता भी अपने बच्चों को उपदेश देते हैं-वे भी रत्नत्रय का सूत्र बोलते हैं, यदि कोई बहुत बड़ा धर्माचार्य भी धर्म का उपदेश देता है वह भी रत्नत्रय का उपदेश देता है बिना रत्नत्रय के तो कोई भी उपदेश चाहे वह लौकिक हो या पारमार्थिक कभी सच्चा हो ही नहीं सकता। माता-पिता बच्चे से कहते हैं-

''बेटा देखभाल कर चलो''

इन तीन शब्दों में रत्नत्रय आ गया। देख-'सम्यग्दर्शन' यह श्रद्धा की बात है, भाल-यह ज्ञान का प्रतीक है, चलो-यह आचरण की क्रिया की बात है। यदि और भी कोई लौकिक अध्यापक है वह कहता है-**''बेटा सोच समझकर बोलो''** सोच-यह सोच शब्द आस्था, दृष्टि, सम्यक्त्व का प्रतीक है, समझ-यह ज्ञान का, चिंतन का प्रतीक है और बोलो-यह क्रिया का प्रतीक है और भी यदि कहीं उपदेश देते हैं तो भी इन त्रयी के आधार से ही बात कही जायेगी तब ही बात पूर्ण हो सकती है।

वैद्य जी ने कहा-इस औषधि को, इस विधि से ग्रहण करना है।

''इस औषधि को कहना'' अर्थात् औषधि पर श्रद्धा।

''इस विधि से''-अर्थात् इसका ज्ञान।

''ग्रहण'' करना-अर्थात् क्रिया।

जब तक वैद्य पर, वैद्य की औषधि पर और वैद्य के द्वारा बतायी गयी विधि पर आस्था नहीं है तो कितनी बड़ी भी औषधि क्यों न हो वह कार्यकारी न हो सकेगी।

जीवन के किसी भी क्षेत्र में देख लो इन तीन के बिना काम चलता ही नहीं, इसीलिये बचपन से ही बच्चों में संस्कार डालने के लिये, चलने के लिये उन्हें तीन पहिये की गाड़ी दी जाती है, उसका सहारा लेकर चलता है टैम्पो की तरह एक पहिया आगे दो पीछे। दोनों हाथ लकड़ी पर टेके गाड़ी आगे-आगे चल रही है वह पीछे-पीछे चल रहा है, मुनिराज को भी तीन रत्नत्रय दिये जाते हैं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तब व्यवहार में वह साधक बन गये, मोक्षमार्गी बन गये, निश्चय में पुनः भले ही एक रह जायें, जैसे बालक जब बड़ा हो जाये तब उसे तीन पहिये की गाड़ी नहीं बस

एक हाथ में डंडा लेकर चल सकता है और फिर आगे उसकी भी आवश्यकता नहीं है फिर तो वह निरालम्ब हो गया फिर तो स्वत: ही गमन होता है गमन करना नहीं पड़ता। तीन आवश्यक हैं, तीन का बहुत महत्त्व है ये तीन शब्द ऐसे हैं जो शाश्वत हैं चाहे कलियुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग कोई सा भी हो ये तीन वस्तुयें हमेशा रहेंगी, ऐसा कोई भी काल नहीं आयेगा जब ये तीन वस्तुयें न रहें-विश्वास, आस्था, निष्ठा प्रत्येक जीव की किसी न किसी के प्रति अवश्य होगी। ऐसा संसार में कोई भी जीव नहीं है जिसकी किसी के प्रति आस्था, श्रद्धा, निष्ठा, विश्वास नहीं हो, जरूरी नहीं है उसकी श्रद्धा भगवान के प्रति हो, जरूरी नहीं है श्रद्धा गुरु के प्रति हो, उसकी पत्नी के प्रति हो सकती है किसी पत्नी की अपने पति में हो सकती है, कहीं न कहीं विश्वास अवश्य रहेगा ही रहेगा, संसार में ऐसा कोई जीव है ही नहीं कि जिसकी आत्मा में श्रद्धा न हो। श्रद्धा मिथ्या होगी या सम्यक् किन्तु होगी अवश्य। श्रद्धा चेतना का प्राण है, श्रद्धा प्राणों का भी प्राण है, जैसे बिना प्राण के शरीर मुर्दा कहलाता है ऐसे ही बिना श्रद्धा के चेतना मुर्दा कहलाती है। यदि चेतना में श्रद्धा नहीं है तो चेतना ही नहीं, किसी की श्रद्धा चेतना के प्रति है तो किसी की श्रद्धा अन्य किसी के प्रति, किसी की श्रद्धा रागी के प्रति है किसी की वीतरागी के प्रति किन्तु श्रद्धा है अवश्य। संसार में ऐसा जीव खोजना कठिन है जिस जीव में कोई ज्ञान न हो, चाहे सिद्धालय में रहने वाले सिद्ध परमात्मा हैं और चाहे निगोद में रहने वाला वह निगोदिया जीव। चाहे तिर्यंच, मनुष्य चाहे नारकी और चाहे देव चार गति 84 लाख योनि में कोई भी जीव क्यों न हो, चाहे मूर्च्छित पड़ा है, चाहे गर्भ में पड़ा है, चाहे मरणासन्न पड़ा है, ऐसा कोई भी जीव नहीं है जिसके पास ज्ञान न हो। हाँ ये हो सकता है किसी का ज्ञान सम्यक् होता है किसी का ज्ञान मिथ्या होता है, किसी का ज्ञान सत्य

होता है किसी का ज्ञान असत्य होता है, किसी का ज्ञान थोड़ा होता है किसी का ज्ञान ज्यादा होता है सभी का ज्ञान एक जैसा नहीं होता। ज्ञान एक ऐसी ज्योति है जिसके बिना आत्मा मृत है। ज्ञान की ज्योति अनादि काल से प्रत्येक आत्मा में जलती चली आ रही है और अनंत काल तक प्रत्येक आत्मा में जलती रहेगी, यह ज्योति कभी बुझ नहीं सकती। इसे अबुझ ज्योति कहते हैं, इस अबुझ ज्योति को बूझना है, जानना है, देखना है।

तीसरी बात है-क्रिया जिस जीव के पास मन वचन काय ये तीन चीज हैं वह इन तीनों से क्रिया करता है चाहे क्रिया सही हो या गलत, अच्छी हो या बुरी, चाहे कम करे या ज्यादा करे। आप कहेंगे कि सिद्धों में और निगोदिया जीवों में क्या क्रिया हो रही है, अगर अंदर में डूब जाओगे तो बताने की आवश्यकता न पड़ेगी। सिद्धों में जो परिणमन हो रहा है वह सिद्धों का सिद्ध रूप हो रहा है, निगोद में निगोदिया का निगोदिया रूप हो रहा है। एक टब में दूध भरा है एक टब में पानी जब हवा चलेगी तो तरंग/लहर दोनों में उठेंगी किन्तु जल में जल रूप और दूध में दूध रूप। किसी की लहर आपस में बदलेगी नही। संसार का कोई भी द्रव्य कूटस्थ नहीं होता सभी में नियम से परिवर्तन होता है सभी में कुछ न कुछ क्रिया होती है क्रियाशीलता उसका गुण है वृक्ष में भी क्रियाशीलता होती है कब उत्पन्न हुआ तुम्हें धीरे-धीरे बड़ा होता दिखाई देता है कोई भी जीव जन्म से लेकर कूटस्थ नहीं होता उसमें कहीं न कहीं क्रियाशीलता होगी। एकेन्द्रिय जीव में उतनी ही क्रियाशीलता होगी जितनी उसमें शक्ति है, दो इन्द्रिय में वचनालाप भी है, तीन इन्द्रिय में वचनालाप और शरीर भी है, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय में भी दोनों हैं और संज्ञी पंचेन्द्रिय में तीनों चीज हैं (मन-वचन-काय) कोई ज्यादा करता है कोई कम करता है किन्तु क्रिया होती अवश्य है। ये तीन चीज अनादि काल से हर जीव

के पास हैं और तीन चीज प्रत्येक जीव के पास अनंतकाल तक रहेंगी। जब तक ये मिथ्या हैं या अल्प हैं तब तक संसार में परिभ्रमण करता है जैसे ही ये तीनों चीज सम्यक् हो जाती हैं तब ये जीव मोक्षमार्गी बन जाता है, कर्मों का विमोचन करने के लिये पुरुषार्थशील हो जाता है और जैसे ही तीनों की पूर्णता हो जाती है वह कर्मों से मुक्त हो जाता है। इसीलिये जैनशास्त्रों में जैनाचार्यों ने कहा प्रत्येक जीव मुक्तात्मा है, प्रत्येक जीव भगवान है, प्रत्येक जीव सिद्ध है-**''सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया''**

निश्चय नय की अपेक्षा से सभी सिद्ध परमेष्ठी हैं, सभी में भगवान आत्मा बैठी है, एकेन्द्रिय जीव भी अपने कर्मों से मुक्त होकर भगवान बन सकता है। जब एक आत्मा कर्मों के बंधन से मुक्त हो सकती है तो प्रत्येक आत्मा में भी वही शक्ति है तो महानुभाव ! शाश्वत सुखों को उपलब्ध करने के लिये अत्यंत आवश्यक है कर्मों का विमोचन। किसी पोटली में रखी वस्तु को प्राप्त करने के लिये उसकी गाँठ को खोलना जरूरी होता है तब पुनः हमारी आत्मा रूपी पोटली में जो गुण रूपी रत्न रखे हैं उन्हें प्राप्त करने के लिए कर्म रूपी गाँठ खोलना भी जरूरी है। मूँगफली या कोई भी फली हो उसके अंदर का दाना निकालने के लिये उसके ऊपर जो कवर है उसे तोड़ना ही पड़ेगा, छोड़ना ही पड़ेगा उसके बिना अंदर की वस्तु प्राप्त नहीं होगी, जब हम लौकिक जगत में सारी बातें जानते हैं कि बाहर के आवरण को तोड़े और छोड़े बिना अंदर की चीज से नाता जोड़ नहीं सकते, किसी वस्तु को पा नहीं सकते तब निःसंदेह आत्मा के वैभव को पाने के लिये कर्मों की पर्तों को तोड़ना भी आवश्यक है।

महानुभाव ! जीवन में केवल तीन ही बातें होती हैं श्रद्धा के तीन कार्य, ज्ञान के तीन कार्य और क्रिया के तीन कार्य। चौथी कोई बात नहीं। पहले ज्ञान की तीन बातें बतायें आपको समझ में आ जायेगा तो

पुनः श्रद्धा और चारित्र की भी बातें आपको समझ में आ जायेंगी। ज्ञान सर्वहितंकर है, ज्ञान से लेन-देन होता है, ज्ञान के जो शब्द हैं उनसे हमारे चित्त का दीपक जलता है, इससे ज्ञान की बात जल्दी समझ में आती है। श्रद्धा निर्विकल्प होती है, श्रद्धा के बारे में जान नहीं सकते, देख नहीं सकते केवल अनुभव कर सकते हैं। चारित्र क्रिया रूप होता है वह बाह्य रूप से शरीर के माध्यम से दूसरे को दिखाई देता है तो पकड़ में आता है, यदि अंदर की क्रिया चल रही है तो वह पकड़ में नहीं आती किन्तु ज्ञान जब हम दूसरों के साथ व्यवहार करते हैं तो ज्ञान का व्यवहार करते हैं श्रद्धा का नहीं, हम तुम्हें श्रद्धा के शब्द नहीं ज्ञान के शब्द देते हैं जिससे तुम्हारी श्रद्धा सम्यक् हो सकती है, सच्ची हो सकती है और अच्छी हो सकती है। हम तुम्हें ज्ञान के शब्द दे रहे हैं जिससे तुम्हारी क्रिया, चर्या, सदाचार अच्छा भी हो सकता है, खराब भी हो सकता है, इसलिए यदि दिया जाता है तो शब्द ज्ञान दिया जाता है ज्ञान की तीन अवस्था हैं, तीन बातें हैं, तीन फल हैं वह ज्ञान तीन बातों से किया जाता है और संसार में तीन ही वस्तुयें हैं जो तीन में समा जाती हैं चौथी कोई चीज है ही नहीं। वे हैं-आपकी भाषा में कहें तो द्रव्य गुण पर्याय। गलत भी नहीं है, संसार में इसके अलावा चौथी चीज है ही नहीं किन्तु मैं इसकी चर्चा नहीं कर रहा-दूसरी ज्ञान की बात कह रहा हूँ-वह तीन चीज हैं-**१. ज्ञेय २. उपादेय ३. हेय**

इसके अलावा चौथी अवस्था नहीं होती।

हेय का आशय है छोड़ने के योग्य, उपादेय का आशय है ग्रहण करने के योग्य। कोई भी व्यक्ति न छोड़े न ग्रहण करे समभाव रखे उस वस्तु में, वस्तु में समभाव है ऐसा वस्तु को जाना तो ज्ञेयभाव आया जैसे गेहूँ का बोरा आपने देखा जाना कि ये गेहूँ हैं तो यह ज्ञेय है, आपने गेहूँ निकालकर थाली में डाले बीने कंकर निकले। ज्ञेय-बोरा

भी है, गेहूँ भी हैं, कंकड भी हैं किन्तु गेहूँ में से कंकड़ बीन करके आपने जाना यह हेय है, बाहर निकाल कर फेंक दिया और गेहूँ उपादेय है उसे ग्रहण कर लिया अब बताओ दशा चौथी क्या होगी? चौथी दशा संसार की किसी वस्तु की हो ही नहीं सकती मैं समझता हूँ जैसे आपके जीवन में तीन दशा आती हैं बचपन, यौवन, वृद्धावस्था ऐसे ही यह तीन दशा हैं। चौथी तो कोई है ही नहीं वह तो मृत्यु है और मृत्यु वह तो व्यवहार की भाषा में है मृत्यु के बाद बचपन, पुनः यौवन पुनः बुढ़ापा आ गया और जिसके यह तीनों चले गये वह तो संसार से ही चला गया।

तो संसार में तीन ही बातें जानने के योग्य हैं और जानना कभी भी हानिकारक नहीं है-लोग कहेंगे जान लेने से पाप ज्यादा लगेगा, नहीं जानेंगे तो पाप कम लगेगा, पहले अज्ञानता में पाप का बंध कम होता था ज्ञान होने से बंध ज्यादा होने लगा इसलिए जानना तो घातक है, 'नही' जानना हानिकारक नहीं है। वस्तु की इच्छा हानिकारक है जानना तो ज्ञेय है संसार के सब पदार्थों को जानो किन्तु उसके प्रति राग, द्वेष, मोह करोगे तो बंध जाओगे, केवल जानने मात्र से बंध नहीं होता। संसार का प्रत्येक परमाणु जानने योग्य है ऐसा कुछ भी नहीं है जो जानने योग्य नहीं है और जानी हुयी वस्तुओं में सब कुछ तुम्हारे लिये नहीं है उसमें तुम कहते हो यह हेय है मेरे योग्य नहीं है, तो दूसरे लोग कहते हैं यह मेरे लिये उपादेय है, उसमें से कुछ त्यागने योग्य है कुछ ग्रहण करने योग्य है। जो आज ग्रहण किया है हो सकता है कल वह भी त्यागने योग्य हो जाये किन्तु दशा तो यही रहेगी पहले जानो फिर ग्रहण करो या त्यागो और कोई क्रिया आप कर नहीं सकते।

तो महानुभाव ! कहने का आशय यह है कि संसार में यदि कर्म भी है तो पहले उसे जानो 'ज्ञेय' (जानने योग्य) फिर कर्म में से

आपने कहा ये पाप है 'हेय' ये पुण्य है तो 'उपादेय' बिना हेय और उपादेय के आपके जीवन की गाड़ी चल ही नहीं सकती, दोनों प्रतिक्षण आपके साथ रहते हैं। हेय-उपादेय का आशय है 'निर्णायक बुद्धि' और बुद्धि का आशय है जानने की शक्ति ज्ञेय। आपने जिसको जाना है उसके बारे में आपकी बुद्धि निर्णय देगी ही देगी कि इसे छोड़ो-इसे पकड़ो ऐसा हो नहीं सकता कि कोई बुद्धिमान् व्यक्ति हो और उसके पास हेय-उपादेय की बुद्धि न हो, वह छोड़े और ग्रहण न करे। जो न छोड़े और न ग्रहण करे ऐसी अवस्था वाले बस दो ही व्यक्ति हो सकते हैं या तो बुद्धिहीन या बुद्धि के आगे प्रज्ञा के धरातल पर जो खड़े हैं। ये दो ही व्यक्ति हैं जो कह सकते हैं कि मेरे लिये कुछ भी हेय और उपादेय नहीं है।

चिंतन सिर्फ संसार के दो ही व्यक्ति नहीं करते अन्यथा संसार के सभी व्यक्ति चिंतन करते हैं। जिसके पास चिंतन का कोई विषय नहीं मूर्ख व्यक्ति क्या चिंतन करेगा और जो चिंतन के, ध्यान के फल को प्राप्त करके परम वीतराग अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं वे क्यों चिंतन करेंगे अन्यथा संसार के जितने भी जीव हैं जीव से आशय संज्ञी मन सहित क्योंकि मन का विषय चिंतन करना है, जितने भी संज्ञी हैं उनमें चिंतन की शक्ति है वे बिना चिंतन के रह नहीं सकते।

महानुभाव ! जब भी बुद्धि काम करेगी तो बुद्धि दो ही निर्णय देगी छोड़ो या ग्रहण करो। जब तक व्यक्ति ये कह रहा है कि मैं ग्रहण करता हूँ या करूँगा या कर सकता हूँ यह बुद्धि जब तक है तब तक वह ध्यान में प्रवेश नहीं कर रहा है, वह चिंतन की दौड़ कर रहा है। चिंतन तो छोटे-बड़े सभी करते हैं किन्तु चिंतन दौड़ना है और ध्यान शांति से बैठना है। महानुभाव ! तो तीन चीजे हैं ज्ञेय, हेय और उपादेय-जीवन में सबसे पहले देखो कि जानने योग्य क्या है। आप कहेंगे पूरा विश्व है जानने के लिये, किन्तु उमा स्वामी महाराज ने

कहा-ज्यादा के चक्कर में न पड़ो। अनंत तत्त्व होते हैं किन्तु सात ही तुम्हारे लिये प्रयोजन भूत हैं। इन सात से ही तुम्हारा काम चल जायेगा आठवें की आवश्यकता नहीं है। किन्हीं आचार्य ने कहा दो को जान लो जीव, अजीव तो तुम्हारा काम चल जायेगा, किन्हीं ने कहा सिर्फ जीव को ही जानो ''अप्पा सो परमप्पा' अपनी आत्मा को पूरी तरह से जान लो फिर कुछ जानना जरूरी नहीं है, अलग-अलग आचार्यों की अलग-अलग व्याख्या हैं। आत्मा को पूरी तरह से जानने का आशय है जानों तो अनात्मा को भी दोनों जानने योग्य हैं जीव और अजीव और जीव को तुमने ग्रहण कर लिया तो 'उपादेय' और अजीव को छोड़ने का प्रयास किया तो 'हेय'। चाहे कोई भी व्यक्ति है कहीं भी कुछ भी जानेगा जो उसे अच्छा लग रहा है उसकी बुद्धि के द्वारा वह उसे नियम से ग्रहण करेगा। ग्रहण करने के लिये पुरुषार्थ शील रहेगा जिसके लिये बुद्धि कहती है अच्छा नहीं है उसे छोड़ने के लिये पुरुषार्थशील रहेगा।

महानुभाव ! किन्तु यह हेय और उपादेय बुद्धि हमारे ज्ञेय से पैदा हो रही है तो वह हमारी है स्वयं की है हमारे खेत की फसल है यदि हेय और उपादेय का निर्णय दूसरे की बुद्धि से प्राप्त करते हैं तो बीच में हम कहीं धोखा खा सकते हैं, उधार की बुद्धि से ज्यादा काम नहीं चलता, उधार का लेकर कब तक खाओगे इसलिये अपने कुऐं में पानी पैदा करो। अपनी बुद्धि की बात अलग होती है। उधार से किसी का उद्धार नहीं हुआ।

जुआ बहुत बड़ा रोजगार है, अगर इसमें हार न हो
और चोरी वह भी बड़ा रोजगार है गर इसमें मार न हो
व्यापार भी बड़ा रोजगार है गर इसमें उधार न हो

इसलिये उधार से आज तक किसी का सुधार नहीं हुआ, उधार तो क्षणभर के लिये होता है, लिया, न जाने कब छिन जाये, उधार से

उद्धार नहीं स्वयं से होगा। ओस की बूँद को चाटने से कभी किसी की प्यास नहीं मिटती, यदि चित्त की प्यास बुझानी है तो अपने अंदर के कुऐं से पीओगे तो चुल्लु भर पानी से भी प्यास बुझ जायेगी, दूसरे का समुद्र भी पी लोगे तब भी प्यास बुझेगी नहीं मुँह खारा ही रहेगा उसमें मिठास नहीं होगी।

महानुभाव ! इसलिये ज्ञान उधार का नहीं स्वयं के पुरुषार्थ का होना चाहिये, क्योंकि व्यक्ति डग्गे बाजी से पैसा कमाने की सोचता है वैसे ही ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। दो नंबर से प्राप्त करेगा तो नकली आयेगा और नकली वस्तु ज्यादा हानिकारक है। यदि औषधि न मिले तो कोई बात नहीं रोग जितना है उतना रहेगा यदि नकली औषधि खा ली तो वह रोग तो ठीक होगा नहीं नया रोग पैदा हो जायेगा। व्यक्ति शॉटकट अपनाना चाहता है वह सोचता है कम पुरुषार्थ करके फ्री हो जाये। शॉटकट का आशय है कम पुरुषार्थ से ज्यादा उपलब्धि किंतु ज्यादा उपलब्धि कभी हो नहीं पाती। 1 रु. में तीन अठन्नी कभी भी नहीं आती और 1 रु. में तीन चवन्नी भी कोई नहीं लेता, इसका आशय ये है कि कम पुरुषार्थ से ज्यादा फल की प्राप्ति कभी नहीं होती ऐसा व्यक्ति मिलना कठिन है जो काम तो करे 16 घंटे और तनख्वा ले 8 घंटे की और ऐसा कोई मालिक नहीं मिलता कि 4 घंटे काम कराकर 8 घंटे की तनख्वा दे। जब आप ये सब बातें जानते हो तो धर्म के मामले में शॉटकट रास्ता क्यों अपनाते हो। व्यक्ति प्राय:कर चाहता है ऐसा आशीर्वाद दे दो कि सालभर में ही ऐसा व्यापार चल जाये कि आज बनिया कल ही सेठ बन जाये, ऐसा कोई उपाय बता दो। ऐसी भावना ही पाप है ऐसी भावना करने वाला जीवन में कभी उन्नतशील नहीं हो सकता। जो व्यक्ति कहता है अपने पुरुषार्थ से कमाऊँगा, जितना पुरुषार्थ से मिलेगा उतना ही चाहिये। ऐसे ईमानदार व्यक्ति भी मिले जिन्होंने सौ रु. की मेहनत की तो सौ ही रु. लिये एक सौ एक नहीं लिये और जिन्होंने परिश्रम कर

उतना ही लिया है तो प्रकृति भी और अन्य संसार के प्राणी भी उसे न्यायोचित स्थान देते हैं और जिसने कम कमाई करके ज्यादा पैसा ऐंठना चाहा है तो वह कमाई करता रहे किन्तु उसे उसका फल नहीं मिलेगा क्योंकि वह पहले खा चुका है। खेत में बीज बोने के पहले उस फसल को खा लिया है तो फसल आने पर तुम खा न पाओगे। ऐसे ही जो व्यक्ति कम पुरुषार्थ करके ज्यादा लेता है तो उसका पैसा कहीं न कहीं मारा जाता है और ईमानदारी का एक पैसा भी कोई किसी का मार नहीं सकता, पचा नहीं सकता। तुमने कभी किसी का अपने पास रखा होगा अन्यथा तुम्हारे साथ ऐसा हो नहीं सकता। जैसा पैसा आता है वैसा ही जाता है यदि तुम्हारी मेहनत की कमाई है तो उसे अग्नि भी जला नहीं सकती।

एक जुलाहा कम्बल बेचने के लिये आता था, उसने दुकानदारों को कम्बल दिये, सभी दुकानदारों ने पैसा तत्काल ही दे दिया बस एक दुकानदार ने कहा मेरे पास अभी नहीं है अब तुम कब आओगे, उसने कहा अगले सप्ताह इसी दिन आऊँगा। दो कम्बल बचे थे उसने उस दुकानदार को दे दिये, जुलाहा अलगे सप्ताह आया उस दुकानदार ने कहा-अभी नहीं हैं पुनः अलगे सप्ताह आया पुनः यही कह दिया कि अभी नहीं हैं जब तीन हफ्ते निकल गये तब उसने कहा-भईया मुझे आवश्यकता है, दुकानदार ने कहा-कौन से पैसे ? कब के पैसे, कहाँ के कम्बल, पागल हो गया क्या? उसने कहा सेठजी मैंने आपको दो कम्बल दिये थे उसके पैसे चाहिये और वे मुझे मिल जायेंगे उसे कोई पचा नहीं सकता। वह सीधा राजा के पास गया बोला राजन् ! मुझे न्याय दीजिये-राजा बोला क्या बात है, वह बोला मैंने दो कम्बल इस सेठ को दिये, तीन सप्ताह पहले, किन्तु अभी तक वह मेरे पैसे नहीं देता। राजा ने कहा-कोई साक्षी या गवाह है, बोला नहीं, गवाह तो नहीं है, राजा बोला तब तो भाई कानून तो अंधा है बिना साक्ष्य के मैं कैसे कह सकता हूँ कि उस सेठ के पास तेरे कम्बल हैं। किन्तु

सत्य तो निर्भीक होता है, सत्य को कभी फांसी नहीं चढ़ सकती, सत्य को फांसी के तख्ते तक तो लाया जा सकता है किन्तु लटकाया नहीं जा सकता और झूठ सिंहासन तक तो लाया जा सकता है किन्तु वहाँ बैठाया नहीं जा सकता।

तो वह राजा से कहता है मुझे न्याय चाहिये, सेठ को बुलाया-पूछा क्या बात है, यह जुलाहा कहता है तुम्हें कंबल दिये और तुमने इसके पैसे नहीं दिये, सेठ बोला-कौन जुलाहा इसे तो जीवन में पहली बार देखा है, मैं इसे जानता ही नहीं जुलाहा है, कि कुम्भकार है, कि बढई है, आपने कहा जुलाहा है तो ठीक है मान लेता हूँ ये कहता है मैंने कम्बल लिये मैं कम्बल वगैरह कुछ नहीं बेचता। राजा ने गुप्तचर को भेजकर दिखवाया कि इसकी दुकान पर कम्बल हैं कि नहीं उसने बताया कि हाँ हैं, राजा ने कहा तुम तो कह रहे थे कि तुम कम्बल नहीं बेचते, बोला हाँ कभी-कभार आ जाते हैं तो बेच लेता हूँ तो कौन से कम्बल बेचते हो, बोला साधारण कम्बल बेचता हूँ, अच्छा तो क्या बाहर के व्यापारी से भी खरीदते हो? हाँ कभी-कभार खरीद लेता हूँ, अच्छा ये बताओ क्या तुमने कभी उस पेड़ के नीचे भी कम्बल खरीदे थे ? बोला हाँ खरीदे तो थे, अब राजा के मन में यह पक्का हो गया कि जुलाहा झूठ नहीं बोल रहा, तभी वह सेठ बात बनाते हुए बोला-हाँ मुझे कुछ याद आ रहा है कि मैंने कम्बल लिये थे और पैसे भी शायद मैंने चुका दिये थे और शायद वो कम्बल जल गये हैं, राजन् आप कहो तो मैं वो पैसे दुबारा चुका देता हूँ। उस जुलाहे ने हाथ जोड़े और कहा-पहली बात यदि पैसे दे दिये हैं तो दुबारा नहीं चाहिये, दूसरी बात यदि कम्बल जल गये हैं तो भी पैसे न चाहिये, किन्तु एक बात है मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि मेरे कम्बल जल नहीं सकते यदि जल गये तो पैसे नहीं लूँगा, राजा को लगा-ये तो बहुत बड़ी बात कह गया, राजा ने कहा ठीक है यदि तेरा कम्बल नहीं जला

तब तो पैसे मिलेंगे और यदि कम्बल जल गया तो पैसे नहीं मिलेंगे-बोला ठीक है।

हाथ कंगन को आरसी क्या, पढे लिखे को फारसी क्या।

एक कम्बल लाया राजा ने अपने दरबार में कम्बल पर मिट्टी का तेल डाला कम्बल धूँ-धूँ कर जलने लगा। सब लोग देखने लगे, देख कम्बल तो तेरा जल रहा है बोला जल जाने दो महाराज-दुनियाँ में कभी सत्य जलता नहीं है और असत्य कभी टिकता नहीं है, जल जाने दो मेरे कम्बल से असत्य जल जाने दो जो सत्य होगा वह मेरा कम्बल होगा, जलते-जलते देखा-कि जहाँ मिट्टी का तेल था वह जल गया, आग शांत हो गयी और कम्बल ज्यों की त्यों रहा उसने कहा-दुनिया में सत्य कभी जलता नहीं, सेठ कह रहा है कि दुकान में आग लग गयी और मेरे कम्बल जल गये किन्तु मेरे कम्बल जल नहीं सकते क्योंकि वे डग्गेबाजी की कमाई के नहीं मेहनत ईमानदारी के थे। एक पैसा ज्यादा लेता नहीं, एक पैसा ज्यादा छोड़ता नहीं, राजा ने कहा-धन्य है ऐसा व्यक्ति जो मेरे राज्य में है, राजा ने स्वर्ण की सौ मुद्रा मंगाकर उसे देना चाहीं, उसने कहा महाराज मैं इसे नहीं ले सकता ये तो मिट्टी है मेरे दो आने के कम्बल का मूल्य मेरे लिये अन्य सब वस्तुओं से अनमोल है, बढ़कर है। मेरे दो पैसे आपके राज्य से बढ़कर हैं, तो कहने-का आशय है कि ईमानदारी कभी छली नहीं जाती।

महानुभाव ! आज बस इन्हीं भावनाओं के साथ कि ज्ञेय को जानें, हेय को त्यागें, उपादेय को ग्रहण करें इसी में आत्मा का हित निहित है। रत्नत्रय के माध्यम से कर्मों का विमोचन संभव है और कर्मों के विमोचन के बिना जीवन में शाश्वत सुखों की उपलब्धि नहीं हो सकती। तो संसार के समस्त प्राणी शाश्वत सुखों को प्राप्त करें। इसी भावना के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान की जय''

पुण्य के साथी

आचार्यों ने लिखा है-

अभ्रछाया खल प्रीति सिद्धमंत्र च योषितः।
केयत् काले च भोग्यानि यौवनानि धनानि च॥

अभ्र का अर्थ होता है मेघ, बादल। श्रावण व आषाढ मास में बादल बहुत छाते हैं पूरा सूर्य ढक जाता है, किन्तु आसोज मास की धूप बड़ी तेज होती है कभी-कभी बादल का कोई टुकड़ा आ जाये तो बात अलग है उस अभ्र छाया का कोई विश्वास नहीं, कभी उन बादलों की छाया यहाँ कभी वहाँ दिखाई देती है कभी हवा के झोंके से बादल उड़ते दिखायी देते हैं। मेघ आकाश में हैं कब तक ठहरेंगे, कहाँ ठहरेंगे कोई भरोसा नहीं। कोई भी निमित्तज्ञानी ज्योतिषी बादलों को देखकर कह नहीं सकता कि ये बादल इसी स्थान पर ठहरे रहेंगे, जायेंगे नहीं। जो स्थिर पदार्थ दिखाई देते हैं वह तो स्थिर रह नहीं पाते उन बादलों का क्या भरोसा जिनका स्वभाव ही गमन करना है, जो हवा के आधीन हैं हवा जहाँ ले जाये बादलों को वहीं जाना पड़ता है, बादल अपने रोके रुकते नहीं हैं और अपने चाहे जा नहीं सकते।

आचार्य महोदय कहते हैं-'अभ्रछाया खल प्रीति'' दुष्ट व्यक्ति की प्रीति शाश्वत नहीं होती आज तुमसे जो प्रीति कर रहा है, कह नहीं सकते वह प्रीति अंतरंग से है या बहिरंग से। आज तुम्हारे सामने जो अश्रुपात कर रहा है कह नहीं सकते वह तुम्हें रिझाने या मनाने के लिये हैं कि वास्तव में तुम्हारे लिये प्राण गंवाने के लिये हैं। आँखों से आंसू बहाने वाले का भरोसा नहीं है कि कब प्राण लेने को तैयार हो जाये। सज्जन पुरुष की प्रीति युगान्तर तक भी बदलती नहीं है, कल्प काल भी निकल जायें तब भी बदलती नहीं है। सज्जन की प्रीति सिद्धत्व तक कायम रहती है, क्योंकि भव्य जीव, सज्जन पुरुष

सिद्धालय में पहुँचेंगे और दोनों आत्मायें सिद्धालय में पहुँचकर अनंतकाल तक साथ-साथ रहेंगी, किन्तु दुष्टों की प्रीति ज्यादा चलती नहीं है। एक भव तक भी नहीं चलती, दोनों एक दूसरे से अपने स्वार्थ की सिद्धि करना चाहते हैं, जब उसका काम सिद्ध हो गया तब वह तुम्हें भूल गया और दूसरे का काम सिद्ध हो गया तो वह उसे भूल गया, फिर किसी को किसी से काम पड़ा तो पुनः आकर के हाथ जोड़ लिये, पैर पकड़ लिये क्षमा मांग ली, सिर्फ अपना काम निकालने के लिये, काम सिद्ध हो गया फिर भूल गये।

अर्थात् दुष्ट जनों की प्रीति विश्वास के योग्य नहीं है जैसे बादलों की छाया का कोई विश्वास नहीं है। यदि प्रीति करना है तो सज्जन से करना दुर्जन से प्रीति करके ये न सोचना कि मेरा जीवन निराकुलता के साथ व्यतीत हो जायेगा, दुष्ट जनों की प्रीति से क्या आज तक किसी को संतोष मिला है। दुष्ट जन तो दहकते अंगारों की तरह से होते हैं उनके पास जाने में भी संताप होता है, पाप लगता है इसीलिये भले आदमी दुष्ट पुरुषों के पास नहीं जाते, उनकी संगति नहीं करना चाहते। दुष्ट पुरुष का उसी प्रकार सेवन करते हैं जैसे कड़वी औषधि को मजबूरन सेवन करना पड़ रहा हो उसके सिवाय कोई औषधि ही नहीं है ऐसे ही दुष्ट व्यक्ति के पास जाना पड़े तो जाता है। दुष्ट पुरुष तो मलोत्पादक होता है जैसे शरीर की शुद्धि करते हैं मल का त्याग करना पड़ता है बिना उसके काम नहीं चलता किन्तु मल में रहना सज्जन पुरुष कभी नहीं चाहेगा। सज्जन व्यक्ति क्षण दो क्षण बैठेगा तो सज्जन पुरुष के पास बैठेगा यदि सज्जन का सान्निध्य नहीं मिल रहा है तो आँख बंद करके सज्जन के सान्निध्य का अनुभव करेगा, धर्म के दो शब्द चिंतन करेगा, सत्संग की ओर दौड़कर के जायेगा उसे घर में चैन नहीं पड़ पायेगा। किन्तु दुष्ट जनों की प्रीति विश्वास के योग्य नहीं होती। दुष्ट कौन है? यदि किसी को दुष्ट कहा जाये तो उसे बुरा

लग जायेगा, किन्तु जानना जरूरी है, नहीं जानेंगे तो उससे बचेंगे कैसे?

दुष्ट कौन है ? जो अपने जीवन में इष्ट पदार्थ को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं वे सब दुष्ट हैं, जो इष्ट से विपरीत है वह दुष्ट है। इष्ट है हमारा आत्मीय सुख, हमारा स्वभाव, उसे प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं स्वभाव से विभाव की ओर जा रहे हैं, सुख को छोड़कर के दु:ख की ओर जा रहे हैं, योग को छोड़कर भोग की ओर जा रहे हैं, धर्म को छोड़कर अधर्म की ओर जा रहे हैं, पुण्य को छोड़कर पाप की ओर जा रहे हैं। जो गलत धारणा में जी रहे हैं, अहिंसा को छोड़ हिंसा का समर्थन कर रहे हैं, सत्य को छोड़कर असत्य में ही आनंदमग्न हो रहे हैं, अचौर्य को छोड़ चोरी की लत लगी है, शीलव्रत को छोड़कर नि:शीलता का उच्छृंखल नृत्य हो रहा हो, संतोष वृत्ति का त्याग करके परिग्रह का नि:सीम अम्बार लगाये जा रहा हो उस व्यक्ति को दुष्ट ही कह देना चाहिये। उसका मन शिष्ट नहीं हो सकता।

जो प्रभु परमात्मा के पास बैठना नहीं चाहता है, निर्ग्रंथ गुरुओं के पास बैठना नहीं चाहता है, धर्म के दो शब्द नहीं सुनना चाहता है जिसे सदाचार-शिष्टाचार की बात अच्छी नहीं लगती है, जो माता-पिता की विनय भी नहीं कर पाता है उसे दुष्ट कह देने में कोई बुराई नहीं है। ऐसे व्यक्ति से प्रीति कौन करेगा? दुष्ट व्यक्ति का साथ तो उसका भाग्य भी नहीं देता है। उसका शरीर भी नहीं देता व्यसनों का सेवन कर शरीर को शिथिल कर दिया अब कौन साथ दे। दुष्ट को तो सज्जन पुरुष अपनी संगति से अलग कर देते हैं। दुष्ट दहकते अंगार की तरह ताप देने वाला, संताप देने वाला, अभिशाप देने वाला होता है। दहकता हुआ कोयला कहीं भी छिपा कर रखोगे तो वस्त्र भी जलेगा और तुम भी जलोगे, यदि वह कोयला दहकता हुआ है तो जलायेगा और ठंडा हो गया तो कालिमा का टीका लगायेगा। दुष्टों के

साथ रहोगे तो दुष्टता का परिपाक भोगना पड़ेगा और यदि अपने पुण्य के उदय से उस परिपाक से बच भी गये तो दुनिया जान लेगी कि तुम कैसे हो ?

जुआरी से रखोगे यदि दोस्ताना,
जुआरी समझ लेगा तुमको जमाना
बैठोगे रोज-रोज अग्नि को जलाकर,
तो उठोगे एक दिन कपड़ों को जलाकर।

दुष्टों की संगति तुम्हें शिष्ट न बना पायेगी यदि दुष्टों की संगति से बच भी जाओ तो भी दुष्टता की छाप तो लग ही जायेगी। किसी व्यक्ति का परिचय पूछना है तो उससे पूछो तुम्हारे मित्र कौन-कौन हैं, मित्र कैसे-कैसे हैं, तुम मन में किसका चिंतन करते हो, किसका ध्यान करते हो, इससे उसके व्यक्तित्व का आसानी से परिचय प्राप्त किया जा सकता है। तुम फुरसत की घड़ी में किससे मिलने की चाह करते हो, फुरसत की घड़ी में जिससे मिलने की चाह करते हो, उसके समकक्ष तुम्हारा चित्त होना चाहिये। तो दुष्ट विश्वास व प्रीति के योग्य नहीं है।

''**सिद्ध मंत्र च योषिता**''-जो मंत्र आज आपने सिद्ध किया है उस मंत्र का फल आज प्राप्त कर लेना चाहिये, क्योंकि सिद्धियाँ भी पुण्य के आश्रित हैं जब पुण्य क्षीण हो जाता है तो सिद्धियाँ भी नष्ट हो जाती हैं।

रावण तणे कपाले अट्ठोत्तर सो बुद्धि वसई।
लंका भंजन काले इकइ बुद्धि न संपडइ॥

कहा जाता है रावण हजारों विद्याओं का स्वामी था ''विनाश काले विपरीत बुद्धि'' लंका का विनाश हुआ रावण की मृत्यु हुयी एक भी विद्या काम न दे सकी। कंस ने पूर्वभव में मुनि अवस्था में

साधना करके सात देवियों को सिद्ध किया था, वे कंस के पुण्य के उदय से इस भव में भी साथ देने के लिये आयीं किन्तु कंस ने उनका दुरुपयोग किया श्री कृष्ण की मृत्यु के लिये बुलाया किन्तु वे कृष्ण का बाल भी बांका न कर सकीं। जब कंस की मृत्यु हुयी तब एक भी देवी साथ देने के लिये नहीं आयी।

शंबूक कुमार ने चन्द्रहास खड्ग को सिद्ध करने के लिये बारह वर्ष तक तपस्या की, एक अन्न लेकर के ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये साधना की किन्तु वह उसके फल को प्राप्त नहीं कर पाया। पुण्यात्मा व्यक्ति (लक्ष्मण) को खड्ग प्राप्त हुआ और उसी खड्ग से शंबूक की मृत्यु भी हो गयी। तो सिद्धमंत्रों का सदुपयोग जल्दी कर लेना चाहिये, जो व्यक्ति समय की इतंजारी करते हैं अपने पुण्य का सदुपयोग नहीं करते हैं उनका पुण्य नष्ट हो जाता है। जैसे किसी सेठ के गोदाम में रखे हजारों अनाज के बोरे जिसे उसने न स्वयं भोगा, न भोगने दिया उसमें घुन लग गया तो वह सब नष्ट हो गया। ऐसे ही तुम्हारे पास यदि पुण्य है, सिद्धमंत्र है तो उसके माध्यम से स्व की आत्मा व पर की आत्मा का कल्याण कर लेना चाहिये।

यदि तुम्हारे माध्यम से धर्म की प्रभावना होती है तुम्हें शांति मिलती है, सामने वाले को शांति मिलती है तो अपनी शक्ति का, कला का सदुपयोग कर लेना चाहिये अन्यथा शरीर ही छूट जायेगा तब तुम्हारी शक्ति, तुम्हारी विद्यायें, तुम्हारी कलायें कहाँ काम आ पायेंगी। तो सिद्ध मंत्र पर ज्यादा साल तक विश्वास नहीं किया जा सकता, पाप के उदय में सिद्धमंत्र भी काम नहीं दे पाते। अगली बात कही 'योषिता' जिसका आप दिन रात पोषण करते हैं अपने शरीर से ज्यादा ख्याल जिस प्राण वल्लभा का रखते हैं अर्धांगिनी का रखते हैं वह भी विश्वास के योग्य नहीं है। कभी जो प्राण देने को तैयार थी उसी ने पति के प्राण ले भी लिये, ऐसा भी होता है। अगली बात **'केयत**

काले च भोग्यानि' ये कितने काल तक भोग हैं? जब तक पुण्य है तब तक भोग हैं **'यौवनानि धनानि च'** यौवन और धन ये छः चीजें ऐसी हैं जो पुण्य के माध्यम से रहती हैं जब तक पुण्य है तब तक दिखाई दे रही हैं पुण्य के नष्ट होते ही नष्ट हो जाती हैं। दीपक जलता दिखाई दे रहा है नीचे जो चिमनी है तेल भरा है वह दिखाई नहीं दे रहा, किन्तु इस बात का प्रतीक है कि दीपक जल रहा है तो तेल है और तेल जैसे ही नष्ट होगा दीपक बुझ जायेगा, पुण्य का तेल जब तक हमारी आत्मा में है तब तक ये छः चीजें हमें दिखाई दे रही हैं। पुण्य के माध्यम से आकाश में आपके लिये छाया हो जायेगी देवता आकर के आपके लिये छाया कर देंगे, पुण्य के माध्यम से दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति भी आपके चरणों में आकर के नम्रीभूत हो जायेगा।

पुण्य के माध्यम से असाध्य मंत्र भी आपको सहज में सिद्ध हो जायेगा, पुण्य के माध्यम से हर कोई अंगना आपके लिये प्राण न्यौछावर करने के लिये तैयार रहेगी, पुण्य के माध्यम से मिट्टी को छूओगे तो सोने जैसा काम करेगी, पुण्य के माध्यम से सदा यौवन रहेगा, देव कभी वृद्ध नहीं होते, देव कभी बालक नहीं होते सदा कुमार ही कुमार रहते हैं। ऐसे भी पुण्यात्मा पुरुष देखे होंगे जिन्हें देखकर ऐसा नहीं लगता कि इनकी उम्र इतनी होगी। 60 साल में भी 40 जैसे लगते हैं स्वस्थता व स्फूर्ति रहती है और ऐसे भी देखे जो 40 साल में 70 जैसे दिखाई देते हैं। महानुभाव ! जो मनोबली है वह तनबली और वचनबली भी रहता है। जिसका मन बलिष्ठ है उसका तन जीर्ण-शीर्ण भी हो जाये तो भी जीर्ण-शीर्ण नहीं होता, उत्साह ज्यों का त्यों रहता है, तो ये छः चीजें पुण्य के माध्यम से रहती हैं।

महानुभाव ! जीवन का कोई भरोसा नहीं इतनी उम्र निकल गयी जो बाकी रह गयी है उसके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पर्वत से गिरती हुयी तीव्र वेगगामी नदी की तरह जीवन दौड़ रहा है

आँख बंद करके देखोगे तो लगेगा अरे ! हमारा इतना जीवन निकल गया हम कहाँ सोते रहे। अब निकल गया तो कोई उपाय नहीं है अब जो नदी बहकर आ गयी लौटकर पीछे तो जा नहीं सकती किन्तु जितना काल शेष रह गया है उसका सदुपयोग किया जा सकता है। पान के जो पत्ते पीले पड़ गये, तमोली अब कितना भी पानी छिड़कता रहे उन्हें हरा नहीं किया जा सकता। चेहरे पर कितनी ही सफेदी आ गयी भले ही बाल कितने ही काले करते रहो किन्तु वह दौर पुनः लौट कर नहीं आयेगा। पान के जो पत्ते पीले पड़ रहे हैं उन्हें पीले पड़ने और सड़ने के पहले अच्छा है उन पान के पत्तों का सदुपयोग करें मंगल कार्य में। ज्यादा पानी डालने से वे पीले से हरे नहीं होंगे, अपने जीवन की अनित्यता को पहचानो और संयम की ओर आगे बढ़ो। महानुभाव ! संयम से उत्कृष्ट वस्तु संसार में कुछ भी नहीं है। आपने किस कुल में जन्म लिया यह महत्वपूर्ण नहीं है, जन्म के समय आपके घर में कितनी खुशियाँ मनायी यह महत्वपूर्ण नहीं है महत्वपूर्ण यह है कि जब यहाँ से जाओगे तब कौन से कुल में जाओगे-देवकुल में या नरक के बिल में, तिर्यंच अवस्था में या मनुष्य अवस्था में। मृत्यु के समय तुम्हारी आत्मा में समता का भाव था या नहीं, यदि समाधि पूर्वक शरीर का परित्याग किया है तो मैं समझता हूँ तुम्हारे अनंत जन्म सफल हो गये। एक बार के समाधिमरण से अनंत जन्म सफल हो जाते हैं यदि कोई व्यक्ति संयम के साथ शरीर का परित्याग करता है तो इससे उत्कृष्ट और पुण्य क्या हो सकता है।

महानुभाव ! पुण्य कब क्षीण हो जाये, पाप का उदय कब आ जाये तो समय के रहते पुण्य के रहते पुण्य कार्यों का संपादन कर लेना चाहिये मेरी आपके प्रति यही मंगल भावना है इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान की जय''

चारित्र निर्माण की पाठशाला

आप सभी लोग इस ज्ञान मंदिर में विराजमान हैं मंदिर जितना पवित्र होता है उतना ही पवित्र ये (विद्यालय) ज्ञान मंदिर होना चाहिये। मंदिर हमें प्रभु परमात्मा से मिलाने का एक साधन होता है मंदिर में पुजारी जाते हैं अपने प्रभु की पूजा अर्चना करते हैं और यहाँ पर विद्या के उपासक, विद्या के अर्थी मनसा वाचा कर्मणा विद्या को प्राप्त करने के लिये प्रयास रत होते हैं। महानुभाव ! जीवन में ज्ञान सर्वोपरि है, जिस जीवन में ज्ञान नहीं है वह जीवन मुर्दे के समान कहा जाता है। ज्ञान को जैनाचार्यों ने सुख का कारण कहा, ज्ञान को ही मुक्ति का जनक कहा, ज्ञान ही वैराग्य की जननी है, ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति की आस्था सुदृढ़ होती है, ज्ञान के माध्यम से सुख और शांति का मार्ग प्राप्त होता है, किन्तु ज्ञान प्राप्त करने के लिये व्यक्ति को ईमानदारी के साथ सरस्वती की उपासना करनी चाहिये। जो बच्चे निष्ठा के साथ ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रयासरत रहते हैं वे बच्चे नि:संदेह भविष्य में आदर्श बन जाते हैं दुनिया उनका सम्मान करने के लिये लालायित रहती है। अभी आपकी बाल्य अवस्था है, बाल्य अवस्था में प्राप्त किये गये संस्कार पूरे जीवन को संभालने वाले होते हैं। यदि किसी व्यक्ति की बाल्य अवस्था बिगड़ जाये तब वह युवावस्था में, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था में उन संस्कारों को प्राप्त नहीं कर सकता जो संस्कार बाल्यावस्था में प्राप्त करना संभव था।

प्यारे बच्चों ! ये आपकी अवस्था एक छोटे पौधे की तरह से है छोटे पौधे को माली जैसा चाहे वैसा बना सकता है उसे सीधा भी कर सकता है, उसे टेढ़ा भी कर सकता है, उसे झुका भी सकता है किन्तु वही वृक्ष जब बड़ा हो जाता है तब उसे झुकाना बड़ा कठिन होता है जैसे गीली मिट्टी को जैसा चाहे वैसा आकार दिया जा सकता है उसी प्रकार बाल्यावस्था में पालक जैसे चाहें वैसे संस्कार दे करके बच्चों

को वैसा बना सकते हैं। किन्तु ज्ञान के संस्कार उन्हीं को प्राप्त होते हैं जो बुरी आदतों से दूर रहते हैं। जिन बच्चों में झूठ बोलने की आदत नहीं होती, जो बच्चे सदा सत्य बोलते हैं चाहे सत्य बोलने पर उन्हें कोई भी दण्ड भुगतना पड़े, सत्य बोलने पर चाहे तिरस्कृत होना पड़े वे उसकी भी परवाह नहीं करते, जो बच्चे दया का पालन करते हैं, जो बच्चे अपने जीवन में करुणा का भाव रखते हैं, जो बच्चे कभी किसी को सताते नहीं, कभी शैतानी नहीं करते, जो बच्चे सदैव अपने माता-पिता के चरण स्पर्श करते हैं, अपने बड़े-भाई बहिन या अन्य बड़े जनों को प्रणाम करते हैं, उनकी विनय करते हैं, उनका सम्मान करते हैं, उनका कभी अपकार नहीं करते वे बच्चे जीवन में बहुत उन्नति करते हैं और सम्यक् ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं।

ये मनुष्य पर्याय बहुत दुर्लभ है यह मनुष्य की अवस्था सभी को प्राप्त नहीं होती स्वर्ग के देवता भी मनुष्य बनने के लिये तरसते हैं। आज आपने यह मनुष्य अवस्था प्राप्त की है इस मनुष्य अवस्था की सफलता और सार्थकता कैसे हो इस बात का ज्ञान विद्यालयों के माध्यम से भी प्राप्त किया जा सकता है। बिना ज्ञान के कोई भी व्यक्ति अपने जीवन को सफल और सार्थक नहीं कर सकता। ज्ञान ही इस मनुष्य अवस्था का सार है, जैसे दूध का सार घी है, पुष्पों का सार इत्र होता है ऐसे ही प्राणी के जीवन का सार ज्ञान है और ज्ञान का सार चरित्र है। उस चरित्र का सार है आत्मा की पवित्रता। जीवन में सम्यक् ज्ञान का प्रकाश होना चाहिए यदि प्रकाश नहीं होता है तो वहाँ का वातावरण अंधकारमय हो जाता है, अंधकार में कुछ भी दिखाई नहीं देता, अंधकार में प्राय:कर बुराईयों का जन्म होता है। अंधकार में व्यक्ति के परिणाम विकृत हो जाते हैं, अंधकार में व्यक्ति सही रास्ते से भटक जाता है अंधकार में प्राय:कर के दुर्घटनायें होती हैं, अंधकार व्यक्ति को आँखे होते हुये भी अंधा बना देता है इसलिये अंधकार में

नहीं रहना। ज्ञान ही सच्चा प्रकाश है और अज्ञान ही अंधकार है, ज्ञान जीवन में वरदान है अज्ञान अभिशाप है इसलिये आपको अज्ञानी बनकर नहीं रहना है आपको ज्ञान को प्राप्त करना है, बोध को प्राप्त करना है।

प्यारे बच्चों ! ज्ञान के माध्यम से किसी भी लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। यदि आपके जीवन में उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये परिपूर्ण समग्र सम्यग्ज्ञान नहीं है तब लक्ष्य को प्राप्त न कर सकोगे आप निष्ठा के साथ विद्या प्राप्त करते हो किन्तु जिन अध्यापक से आप विद्या प्राप्त करते हो उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना, उनकी विनय करना, उनका सम्मान करना यह ज्ञान प्राप्ति का एक साधन है। जिस विद्यार्थी के जीवन में विनय का भाव नहीं होता वह विद्यार्थी जीवन में कभी भी उत्तम विद्या को प्राप्त नहीं कर पाता। जीवन में झुकना परम आवश्यक है, ज्यों-ज्यों वृक्ष फलीभूत होता जाता है त्यों-त्यों नम्रीभूत विनम्र होता जाता है। जो बच्चे उद्दण्ड होते हैं, जो बच्चे शरारती होते हैं, जो बच्चे आलसी होते हैं, जो बड़ों का सम्मान नहीं करते उनका जीवन गर्त में चला जाता है इसलिये ज्ञान के फल को प्राप्त करने के लिये अपने जीवन को सफल और सार्थक बनाने के लिये ज्ञान की बहुत आवश्यकता है।

णाणस्स पयासओ

जीवन में ज्ञान का प्रकाश हो **'णाणं णरस्स सारो'** ज्ञान ही जीवन की सारभूत अवस्था है। ऐसे ज्ञान के दिव्य प्रकाश में व्यक्ति जहाँ पर भी कदम रखता है वहीं मार्ग बन जाता है और समग्र दुनिया उसके पदचिह्नों को प्राप्त करने के लिये प्रयासरत रहती है। यदि आपने इसी अवस्था में सहन करके, सुखाभिलाषा त्याग करके उत्तम विद्या को प्राप्त कर लिया तब नि:संदेह आपका आगामी जीवन सुख से सकुशल व्यतीत हो सकेगा। जो बच्चे ज्यादा शरारती होते हैं अपना

कार्य समय पर नहीं करते, अपने गुरुजनों का आदर नहीं करते, उनके संकेत और आज्ञा को नहीं मानते उन बच्चों का जीवन नि:संदेह बिगड़ जाता है। मैं समझता हूँ आप सभी का सौभाग्य है आपका ही नहीं पूरे भारत वर्ष का सौभाग्य है कि आज भी भारत में सरस्वती विद्या मंदिर जैसे विद्यालय हैं। इस काल में भी यदि पुरातन शिक्षा का युग देखने को मिल रहा है तो नि:संदेह यह भारत का गौरव है। सरस्वती विद्या मंदिरों में केवल शब्दों की शिक्षा नहीं दी जाती, संस्कार भी दिये जाते हैं, नैतिक शिक्षायें भी दी जाती हैं। नैतिक शिक्षा के बिना जीवन ऐसा हो जाता है जैसे वह भारभूत बन गया हो। बाहरी विद्या, पुस्तकीय ज्ञान केवल धन कमाने की बात बता सकता है, वित्त का संग्रह करा सकता है किन्तु चित्त की शुद्धि नहीं करा सकता। बाहर के शब्दों का ज्ञान केवल व्यक्ति को लोक में प्रतिष्ठा दिला सकता है किन्तु आत्म प्रतिष्ठा नहीं दिला सकता। सरस्वती विद्या मंदिरों में जिन बालकों ने विद्या प्राप्त की है उनका नि:संदेह आदर्श जीवन रहा है सम्मानीय जीवन रहा है।

प्राय:कर के स्कूलों में, कॉलेजों में आप देखते हो कि अध्यापक होते हैं, टीचर होते हैं जिन्हें सर कहते हैं किन्तु आज भी सरस्वती विद्या मंदिर में वही परम्परा जीवंत है कि जहाँ पर आचार्य शब्द का प्रयोग किया जाता है। गुरु शब्द का प्रयोग किया जाता है। महानुभाव ! आचार्य शब्द ही अपने आप में इस बात का प्रतीक है कि 'आचार्य' अर्थात् जिसकी चर्या आचरण करने के योग्य हो, विद्यार्थी अपने आचार्य की चर्या का आचरण करते हैं, गुरु का अर्थ है जिसमें गुरुता हो श्रेष्ठपना हो, जो गुणों में भारी हो। महानुभाव ! इसलिये शिक्षक की परिभाषा देते हुए लिखा है-

शिक्षक शब्द में तीन अक्षरों का समावेश है पहला अक्षर है शि, दूसरा क्ष तीसरा क। 'शि' का आशय है-**''शिष्टाचार पालको यो''**

जो शिष्टाचार का स्वयं पालन करने वाला हो, 'क्ष'-अक्षर का आशय है-**'क्षमाशील गुणाधिकः'** जो क्षमाशील हो व गुणों में अधिक हो तथा 'क' अक्षर का अर्थ है-**'कर्त्तव्यनिष्ठाध्यापकः'** जो कर्त्तव्यनिष्ठ होता है वही अध्यापक होता है। **सा शिक्षको हि उच्यते**-उसे ही वास्तव में शिक्षक कहा जाता है। शिक्षक में ये तीन बातें कम से कम होना चाहिये अर्थात् पहली बात-वह शिष्टाचारी हो, यदि वह स्वयं शिष्टाचारी नहीं होगा तो अपने विद्यार्थियों को अच्छी शिक्षा कहाँ से देगा। केवल शब्दों में दी गयी शिक्षा कण्ठ तक रहती है और अपनी चर्या के द्वारा दी गयी शिक्षा विद्यार्थी के जीवन में प्रवेश कर जाती है। अपने अध्यापक की चर्या को विद्यार्थी यावज्जीवन भूल नहीं सकता। दूसरी बात विद्यार्थी लघु होते हैं क्षमा के पात्र होते हैं यदि शिक्षक सहनशील नहीं है क्रोधी है तो वह विद्यार्थी की गलती को क्षमा नहीं कर सकता, प्यार से पुचकार कर समझा नहीं सकता तब निःसंदेह वह अयोग्य शिक्षक कहलाता है। जिस शिक्षक को क्षण-क्षण में गुस्सा आ जाता हो, जो शिक्षक अपने विद्यार्थी से बैर बांधकर के बैठ जाये, जो शिक्षक अपने विद्यार्थी से अपेक्षा रखे किन्तु स्वयं उसका पालन न करे तब निःसंदेह वह शिक्षक अपने कर्तव्य की चोरी करने वाला है उस शिक्षक को शिक्षक कहना गुनाह है अपराध है।

दूसरी बात कही शिक्षक वह होता है जो विद्यार्थी की अपेक्षा से गुणाधिक हो। अध्यापक में विद्यार्थी से ज्यादा गुण हों तब विद्यार्थी निःसंदेह अपने गुरु के चरणों में लोट जायेंगे उनके पैर पकड़ लेगें। किन्तु यदि उसमें कोई बुराई है और विद्यार्थी उस बुराई से बचना चाहता है तो गुरु से भी बचने का प्रयास करेगा। तो महानुभाव ! वह शिक्षक क्षमाशील हो, गुणाधिक हो और अगली बात कही कर्त्तव्यनिष्ठ हो। सच्चा शिक्षक वह होता है जो निष्ठा के साथ कर्त्तव्यों का पालन करे। यदि शिक्षक चाहता है कि मेरे विद्यार्थी समय पर कक्षा में

उपस्थित हों तब सबसे पहला पाठ उस शिक्षक को सीखना चाहिये कि वह पहले स्वयं समय पर पहुँचे, यदि शिक्षक चाहता है कि मेरे विद्यार्थी विनम्रता के साथ रहें तो वह स्वयं भी अनावश्यक शब्दों का प्रयोग न करे। यदि शिक्षक भारतीय संस्कृति के विपरीत वेशभूषा को धारण करेगा उसी का आदर करेगा तब विद्यार्थी उसकी बात को नहीं मान पायेंगे। एक शिक्षक को स्वयं भी उस प्रकार की वृत्ति को स्वीकार करना ही चाहिये, जिस वृत्ति को देखकर विद्यार्थी भी स्वयं सदाचार, शिष्टाचार, विनयाचार, मर्यादा एवं भद्रता को सीख सकें। विद्यार्थी के जीवन में पाँच बातों का होना आवश्यक है नीतिकार कहते हैं-

काकचेष्टा बको ध्यानं श्वान निद्रा तथैव च।
अल्पाहारी ब्रह्मचारी विद्यार्थी पंच लक्षणं॥

विद्यार्थी कौवे की तरह चेष्टा करने वाला कहा जाता है कौवे के एक ही आँख होती है किन्तु उसके दो स्थान होते हैं इधर-उधर घूम जाती है इतनी तीव्र चेष्टा होती है कि वह तुरंत ही देख लेता है कि कौन मेरा शत्रु है कौन मेरा मित्र। वह कौवा जैसी तीव्र चेष्टा करता है विद्यार्थी को भी वैसी तीव्र चेष्टा करनी चाहिये। गुरु जी मुख से एक शब्द बोले विद्यार्थी तुरंत ही अपने मन में उसे धारण कर ले। गुरु कुछ पढायें विद्यार्थी कुछ और समझे तो इस तरह विद्यार्थी का जीवन सकुशल नहीं रहेगा। इसलिये विद्यार्थी की चेष्टा ऐसी होनी चाहिये कि एक समय का प्रमाद किये बिना ही स्कूल में ऐसी तपस्या करें कि गुरु के माध्यम से एक-एक शब्द को प्यासे चातक की तरह जिस तरह वह प्यासा चातक स्वाति नक्षत्र की एक-एक बूंद का पान करता है विद्यार्थी भी अपने गुरु के मुख से निःसृत एक-एक शब्द को ग्रहण करे। **बको ध्यानं**-जैसे बगुला का ध्यान अपने शिकार पर रहता है अपनी आँख बंद कर बैठा है उसे दुनिया की और कोई चीज दिखाई

नहीं देती सिर्फ अपना शिकार देखता है ऐसे ही विद्यार्थी को अपने हित की ही बात याद रखना चाहिये अन्य अनावश्यक चीजों को ग्रहण करने वाला न हो। **''श्वान निद्रा तथैव च** विद्यार्थी 12 घंटे सोने वाले नहीं होते हैं जो ऐसा करते हैं वे विद्यार्थी नहीं सुखार्थी होते हैं। नीतिकार कहते हैं-

सुखार्थिनो कुतो विद्या, विद्यार्थिनो कुतो सुखं।
सुखार्थिनो त्यजेत् विद्या, विद्यार्थिनो त्यजेत् सुखं॥

सुखार्थी के लिये विद्या कहाँ और विद्यार्थियों के लिये सुख कहाँ ? यदि सुखार्थी बनना है तो विद्या को छोड़ दो नहीं तो विद्या तुम्हें छोड़ देगी, विद्यार्थी बनना है तो सुखों को छोड़ दो। जो विद्यार्थी अवस्था में सुखों का त्याग कर देता है ऐसा विद्यार्थी यावज्जीवन सुखी रहता है यदि विद्यार्थी सुखों का भोक्ता होता है तो यावज्जीवन दु:खों को सहन करना पड़ता है तो महानुभाव!

आगे बताया-**'अल्पाहारी ब्रह्मचारी'** विद्यार्थी ज्यादा भोजन, गरिष्ठ भोजन करने वाला न हो यदि वह ज्यादा भोजन करता है तो उसे बार-बार प्रमाद आयेगा, उसका पढ़ने में मन नहीं लगेगा, ज्यादा भोजन करके चैन से बैठ नहीं पायेगा, पढ़ते-पढ़ते नींद आने लगेगी। अच्छी से अच्छी बात सुनाने पर भी बात उसके समझ में नहीं आयेगी। इसलिये विद्यार्थी को उतना ही भोजन करना चाहिए जितना उसके लिये प्रमादकारक न हो। वह अपने उदर को दो भाग भोजन से भरे, एक भाग पानी से और पुन: एक भाग खाली छोड़ दे जिससे उसे प्रमाद न सताये। जो विद्यार्थी जिह्वा लोलुपी होते हैं उन्हें ज्ञान जल्दी प्राप्त नहीं होता, जो विद्यार्थी जंक या चाइनीज़ फूड आदि खाते हैं उनकी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है।

आप प्रेक्टिकल देख लेना जो विद्यार्थी बाजार का ज्यादा भोजन करते हैं उन्हें ज्यादा याद नहीं होता, जो विद्यार्थी अपनी माँ के द्वारा

बनाया गया भोजन ग्रहण करता है उस विद्यार्थी की बुद्धि तेज होती है। यदि परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करना चाहते हो तो अपने घर का, अपनी माँ के हाथ का भोजन करना चाहिये बाजार का नहीं। विद्यार्थी को गंदे पदार्थ अण्डा, मांस, शराब का सेवन नहीं करना चाहिये। मुझे विश्वास है इस विद्या मंदिर में उन बालकों का प्रवेश नहीं होगा जो इस अभक्ष्य (अंडा मांस शराब) का सेवन करते हों। उन्हीं को प्रवेश मिलता है जिनका शुद्ध खान पान होता है। क्योंकि वर्तमान में कुछ स्कूल ऐसे भी हो सकते हैं जहाँ अण्डा माँसादि पर प्रतिबंध न हो। विद्या के मंदिर कहलाने वाले इन विद्यालयों में ही तो भारतीय संस्कृति की सुरक्षा होती है, समीचीन शिक्षा प्रदान की जाती है।

प्लूटो ने कहा-

''सच्ची शिक्षा वही है जो बालकों के अंदर सद्‌गुणों का विकास करे।''

विवेकानंद ने कहा-

''विद्यार्थी के अंदर बहुत सारी संभावनायें होती हैं उन संभावनाओं को बाहर लाना, प्रगट करना ही सच्ची शिक्षा का काम है।''

यदि विद्यार्थी की संभावनाओं को तुम प्रकट नहीं कर सके तो वह सच्ची नहीं कही जाती।

प्यारे बच्चो ! मानवीय गुणों से युक्त मानव दो हाथ वाला भगवान होता है ऐसा नारायण श्री कृष्ण ने कहा। जो मानवीय गुणों से युक्त है इस कलिकाल में वह दो हाथ वाला भगवान है और जो मानवीय गुणों से रहित है। ''ते सर्वे पशु सन्निभा:-वे सभी पशु के समान हैं। इसलिये आप मानवीय गुणों को प्राप्त करें।

ये विद्यालय चारित्र निर्माण की पाठशाला है इसमें जीवन का निर्माण होता है। स्कूलों में न केवल धन कमाने की बातें सिखायी

जाऐं अपितु आचरण की, धर्म की शिक्षा भी दी जाऐ। बिना धर्म के व्यक्ति चित्त में सुख शांति को प्राप्त नहीं कर सकता। आप सभी बच्चों को बड़ी विनम्रता के साथ, मर्यादा के साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन करना है, अपने अध्यापकों के प्रति विनम्रता का भाव रखना है। प्रात:काल सबसे पहले अपने माता-पिता के चरण स्पर्श करना चाहिये, पुन: विद्यालय पहुँचकर गुरुजनों को प्रणाम करें चाहे वे गुरुजन कहीं भी मिल जायें उन्हें नमस्कार करना चाहिये। जिन विद्यार्थियों ने ऐसी शिक्षा को प्राप्त किया है वे विद्यार्थी नि:संदेह ऊँचाई तक पहुँचे हैं। जिन स्कूलों में सदाचार शिष्टाचार की शिक्षा दी जाती है उन स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थी ही सफल हो पाते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी आज से 2000 साल पूर्व हुये जिन्होंने छोटी अवस्था में ही दिगम्बर दीक्षा ले ली थी उन्होंने लिखा कि ज्ञान क्या है-

जेण तच्चं विबुज्झेज्ज जेण चित्तं णिरुज्झदे।
जेण अत्ताविसुज्झेज्ज तं णाणं जिण सासणे॥

जिसके द्वारा तत्त्व का बोध होता है, जिसके द्वारा मन का निरोध किया जाता है, जिसके द्वारा आत्मा का शोधन किया जाता है जिन शासन में उसे ज्ञान कहा है। उस ज्ञान के दीपक को जलाना है जिससे हमारे अज्ञान का अंधकार नष्ट हो जाये।

अध्यापकों को यही संकेत देना चाहता हूँ कि बच्चों को मातृभाव से शिक्षित और संस्कारित करें। मैं समझता हूँ यदि सबसे अच्छी कोई सेवा है तो वह है अध्यापक की। यदि कोई एक ड्राइवर प्रमादी होता है तो हो सकता है वह बस में बैठी सवारियों को मौत के घाट उतार दे, किंतु यदि एक अध्यापक प्रमादी हो जाता है तो मैं समझता हूँ वह कई पीढ़ियों को मौत के घाट उतार देता है। इसलिये कभी अध्यापक

को प्रमादी नहीं बनना है। निष्ठा के साथ जागरूक होकर बच्चों को धर्म के संस्कार देना है। गुरु का उपकार विद्यार्थी के लिये माता-पिता से बढ़कर होता है मैं आप सभी बच्चों और अध्यापकों को बहुत-बहुत आशीर्वाद देता हुआ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

दुष्ट संग से करो किनारा

आचार्य भगवन् कहते हैं-

अज्ञान हेतुः प्रबलः प्रणीतः, खल प्रसंगः सुख शांति लोपी।
विपत्प्रदायी कलह प्रचारी, ज्ञात्वेति तत्त्याग विधिर्विदेयः॥

जीवन में अच्छे निमित्तों की प्राप्ति कर लेना जीवन को सफल और सार्थक बनाना है। उन निमित्तों को प्राप्त करके अच्छाईयों का प्रादुर्भाव हो, गुणों का संवर्धन हो, पापों से विरक्ति हो, धर्मध्यान का वृक्ष पुष्पित और फलित हो ऐसा पुण्यनिमित्त जीवन में किसी पुण्यवान् को ही मिल पाता है, अन्यथा संसार के अधिकांश प्राणी उन निमित्तों के बीच में रहते हैं जिन निमित्तों के बीच में रहने से व्यक्ति का चित्त क्षुब्ध रहता है, दुःखी होता है, संक्लेशता बनती है, आर्त्तरौद्र ध्यान बनते हैं। कुसंगति के बारे में लिखा है।

अज्ञान हेतु प्रबलः प्रणीतः

कुसंगति, दुष्ट पुरुषों की संगति अज्ञान का हेतु है, अज्ञान की जनक है जैसे ज्ञानी पुरुषों की, साधु पुरुषों की संगति में बैठने से जीवन में सम्यग्ज्ञान की वृद्धि होती है ऐसे ही अज्ञानी पुरुषों की संगति में बैठने से अज्ञान की वृद्धि होती है, मोही व्यक्तियों के पास बैठने से मोह की वृद्धि होती है। आप में से कोई भी यदि साधुओं के पास रहने लग जाये तो छः महीने में आपका मोह संसार के प्रति आधा रह जायेगा। आचार्य अमृत चंद्र स्वामी जी ने कहा-छः महीने तक के लिये अपने शरीर को पड़ोसी मानकर मेरे पास रह तो सही। बस छः महीने तक रुक जायेगा तो आत्मा का अनुभव कर लेगा। तूने शरीर को आत्मा मान लिया है शरीर को शरीर नहीं माना तू शरीर को पड़ोसी मान लेगा तो आत्मा को प्राप्त कर लेगा। जैसी संगति होती है वैसा ही प्रभाव पड़ता है। जो कुसंगति है वह अज्ञान का हेतु है व्यक्ति

के जीवन में नैसर्गिक अज्ञान कम होता है दूसरों के द्वारा ग्रहीत अज्ञान ज्यादा होता है जैसे श्रद्धा के भेद होते हैं नैसर्गिक और अधिगमज। जिसे दूसरे शब्दों में गृहीत और अगृहीत मिथ्यात्व कह सकते हैं अगृहीत मिथ्या श्रद्धा इतनी खतरनाक नहीं होती जितनी खतरनाक गृहीत मिथ्या श्रद्धा होती है। अगृहीत सम्यक्दर्शन ज्यादा प्रभावी होता है गृहीत सम्यक्दर्शन की अपेक्षा से। आप कहेंगे कि दो प्रकार की बात कह रहे हैं अगृहीत मिथ्यादर्शन कम असर दिखाता है गृहीत मिथ्यादर्शन ज्यादा असर दिखाता है। गृहीत सम्यक्दर्शन कम असर दिखायेगा, अगृहीत सम्यक्दर्शन ज्यादा असर दिखायेगा क्यों? इसलिये कि अगृहीत मिथ्यादर्शन अनादि काल से चला आ रहा है उसमें कोई धारणा मान्यता नहीं है उसमें केवल इतनी मान्यता है कि शरीर आत्मा एक हैं और गृहीत में किसी के पढ़ाये जाने पर आपने मान लिया कि हिंसा करने पर आत्मा का कल्याण होता है, बलि देने से आत्मा का कल्याण होता है, रागी द्वेषी देवों की उपासना करने से आत्मा का कल्याण होता है अब आपने ग्रहण तो किया है अधर्म। धर्म मानकर के अधर्म को स्वीकार कर लिया है। इसे छोड़ने का मन नहीं होता। और मन में ये धारणा बना ली कि मैं धर्म कर रहा हूँ किन्तु कर रहे हो अधर्म, अतः उसे छोड़ नहीं पाओगे इसीलिये गृहीत मिथ्यात्व आत्मा के लिये ज्यादा घातक है अगृहीत मिथ्यात्व की अपेक्षा।

अगृहीत सम्यग्दर्शन ज्यादा लाभदायक है कैसे? गृहीत सम्यग्दर्शन होता है देव शास्त्र गुरु की देशना सुनकर के, उनकी प्रेरणा से सम्यक्त्व को प्राप्त किया और श्रद्धा आपकी बनी। यदि श्रद्धा आपकी धुल गयी तो व्यक्ति पुनः पतित होता चला जायेगा। अगृहीत सम्यग्दर्शन अर्थात् नैसर्गिक सम्यग्दर्शन इसमें जो देशना काम कर रही है वह कई भव पुरानी भी हो सकती है वह संस्कार अभी जागृत हो गये अपने अवधिज्ञान से जान रहा है, इतने भव पहले महाराज ने मुझे ऐसा

समझाया था, ऐसे पाप करने से ऐसा फल मिलता है उस समय मैंने माना नहीं था, मैंने पाप कर्म भोग कर देख लिया, किन्तु सत्य बात तो यह है कि धर्म ही कल्याण करने वाला है, अहिंसा ही धर्म है। वह श्रद्धा नैसर्गिक स्वभाव से उत्पन्न होती है कोई मुनिमहाराज नहीं समझा रहे उस समय तो एकान्त में बैठा है पहाड़ की चोटी पर चिंतवन कर रहा है वह अगृहीत सम्यग्दर्शन अर्थात् नैसर्गिक सम्यग्दर्शन ज्यादा प्रभावकारी होता है गृहीत सम्यग्दर्शन की अपेक्षा और बाद में नैसर्गिक सम्यक्दर्शन की पूर्ति करने के लिये अधिगमज होता चला जाये, ज्ञान से और पुष्टि होती चली जाती है।

तो महानुभाव ! अज्ञान कुसंगति का हेतु है और कुसंगति अज्ञान का। कुसंगति में बैठकर ज्ञान की बातें नहीं मिलती, कुसंगति में बैठकर आत्मा को शांति नहीं मिलती, कुसंगति में बैठकर कोई सही रास्ता नहीं मिलता, कुसंगति में अंधकार ही अंधकार मिलेगा वहाँ विशुद्धि नहीं मिलेगी। संक्लेशता, वैमनस्यता, कलह इत्यादि दुर्भावों की संतति वहाँ सतत चलती रहती है वह कसुंगति अज्ञान का हेतु है और दु:ख का सबल कारण है यदि तुम्हें जीवन में शाश्वत सुख को प्राप्त करना हो तो कुसंगति को छोड़ देना चाहिये, अन्यथा दु:ख उसका पीछा नहीं छोड़ेगा, कोई व्यक्ति शराब पीता है यदि दूसरा उस व्यक्ति की संगति छोड़ देगा तो उसकी भी शराब छूट जायेगी। अंडा मांस खाने वाले की संगति करने पर असर वैसा ही आयेगा और यदि अंडा-मांस छोड़ना चाहता है तो उसे वैसे व्यक्तियों की संगति भी छोड़ देना चाहिये। ये कुसंगति दु:ख का समर्थ हेतु है।

अगली बात है **खल प्रसंगः सुख शांति लोपी** जीवन में सुख शांति का लोप हो जाता है दुष्ट की संगति का उदय होते ही सुख शांति रूपी सूर्य चन्द्रमा दोनों ही अस्त हो जाते हैं अमावस्या की रात्रि और मेघाछिन्न दिन उसके जीवन में आ जाता है। समग्र दिन मेघों से

आच्छिन्न रहता है सूर्य दिखता ही नहीं सुबह से लेकर शाम तक कब उदय हुआ कब अस्त हुआ सुबह भी अंधकार रहा रात्रि में भी। ऐसे ही जो व्यक्ति कुसंगति में लग जाता है उसके रात-दिन मेघाछिन्न रहते हैं दु:ख के बादल आकाश में छाये रहते हैं सुखशांति के सूर्य चन्द्रमा उदय को प्राप्त नहीं हो पाते। कुसंगति उस श्याम मेघ की तरह है जो कि आपके धवल चेहरे को भी श्यामल करने वाली है, आपके चित्त को भी श्याम बनाने वाली है, कुसंगति आपकी करनी को भी श्याम बनाने वाली है। कुसंगति का परित्याग करना जीवन को सफल बनाने के लिये पहली शर्त है अग्नि को जलाकर कोई व्यक्ति धूप में बैठा है सोचता है मुझे शीतलता मिल जाये तो यह कठिन है, ऐसे ही कुसंगति के बीच में रहने वाला व्यक्ति कितना ही प्रयास करे कितनी ही अच्छी-अच्छी बातें सोचे किन्तु कुसंगति का असर तो जीवन में आता ही आता है।

महानुभाव! जिसे कुसंगति से विरक्ति है ऐसा व्यक्ति कुसंगति में न रहना चाहेगा। वहाँ से भागना चाहेगा कोई जबरदस्ती पकड़कर के बाँधकर के बंधन में डाल दे फिर भी वह उनमें आसक्त नहीं होगा। दुष्टों से प्रीति कौन करता है? या तो दुष्ट या तो अत्यन्त उत्कृष्ट। दुष्ट प्रीति करता है क्योंकि उसको दुष्टता में ही आनन्द आ रहा है अत्यंत उत्कृष्ट व्यक्ति करता है अर्थात् जिसके अंदर इतनी करुणा जाग्रत हो गयी कि हे प्रभु ! इस दुष्ट का भी कल्याण हो जाये। अत्यन्त उत्कृष्ट जिस पर दुष्ट का प्रभाव नहीं पड़े। जिस पर दुष्ट का प्रभाव पड़ेगा ऐसा व्यक्ति दुष्ट से दूर ही रहेगा और जिसकी दृष्टि में दुष्ट और शिष्ट में भेद नहीं है वह सबसे स्नेह प्रीति करता है। **विपदः प्रदायी कलह प्रचारी** दुष्ट की संगति से जीवन में विपत्तियाँ आती हैं–

सब दुष्ट संग से करते रहो किनारा
ओछे से जिसने करी प्रीत वो हारा

एक चूहा जल के बीच बहा जाता था
एक हंस ऊपर से उड़ा आता था
देख हंस मूषक को रहम खाता था
पंजों से पकड़ पंखों पर बिठलाता था

एक चूहा जो पानी में बहता जा रहा था उसे देखकर हंस को दया आई, और उस हंस ने उस चूहे को अपने पैरों से पकड़कर पंखों में छिपा लिया। चूहा मरणासन्न था ठंडे जल में ठंडा ही पड़ गया था किन्तु हंस ने उसे गर्मी देने के लिये अपने पंखों में दबा कर छिपा कर रखा।

जब हुआ होश चूहे को पर को कुतर कर डाला
ओछे से जिसने करी प्रीत वो हारा॥

उस चूहे ने अंदर बैठे-बैठे उस हंस के पंखों को काट डाला सामने से जब शिकारी आया हंस ने उड़ने के लिये जब पंख फैलाना चाहे फैला न पाया और शिकारी ने उसे मार डाला।

महानुभाव ! दुष्ट व्यक्ति दुष्टता को नहीं छोड़ता और शिष्ट व्यक्ति का दुष्ट कितना ही अपमान करे किन्तु वह अपनी शिष्टता नहीं छोड़ता। कोयले को चाहे कितना ही धोओ वह काला ही रहेगा उसकी सफेदी का बस एक ही उपाय है अग्नि में डालकर जल जाने दो जब जल जायेगा तो काला कोयला भी सफेद हो जायेगा, दुष्ट व्यक्ति का भी यही उपाय है उसे संघर्ष की अग्नि में डाल दो जब जल जायेगा तो वह काला दुष्ट व्यक्ति भी सफेद हो जायेगा। संघर्ष की अग्नि में जले बिना दुष्ट को धवल नहीं किया जा सकता। अगली बात कही–**'कलह प्रदायी'**

''ओछी संगति क्रूर की, आठों याम दुःख देत''

क्रूर व्यक्ति की संगति आठों प्रहर आपत्ति और विपत्ति देने वाली है। रावण ने दुष्टता की सीता का अपहरण किया इसमें समुद्र का क्या

दोष ? **'महिमा घटी समुद्र की रावण बसो पड़ोस।'** पड़ोस में रावण होने से समुद्र भी बंधन को प्राप्त हो गया, पुल नदियों पर तो बनाये जाते हैं समुद्र पर पुल नहीं बनाये जाते किंतु समुद्र को भी बांधा गया रावण के पड़ौस में रहने से। दुष्ट की संगति से जब समुद्र भी बंधन को प्राप्त हो गया तब अन्य की तो बात ही क्या है। सूखे चंदन के साथ गीला भी जल जाता है। लोहा गंदा है जंग मिट्टी आदि लगी है उसे अग्नि में तपाया जाता है, उसे पीटा जाता है उस गंदे लोहे की संगति अग्नि करती है तो वह अग्नि भी मुद्गर की चोट सहन करती है वह भी हथौड़े से पीटी जाती है। अग्नि को तो लोग देवता मानते हैं। वह तो सर्वभक्षी है सब कुछ स्वाहा कर दे किन्तु वह अग्नि भी चोट खाती है पिटती है किसकी संगति से? दुष्ट की। दुष्ट की संगति यदि सज्जन भी करता है तो उसे भी चोट खानी ही पड़ती है ऐसा इतिहास में आज तक कोई व्यक्ति नहीं निकला जो दुष्ट की संगति से साबुत निकल कर आ गया हो। दुष्ट तो कोयले की तरह से है कोयले को हाथ पर रखोगे तो जलोगे। ठंडा पड़ गया तो काला हाथ तो करेगा ही इसलिये यह तो दूर से ही त्याज्य है। अगली बात कही

''विपदप्रदायी'' दुष्ट की संगति नाना प्रकार के दु:खों को देने वाली होती है आप आंख बंद करके सोचो जब-जब भी आपने दुष्ट व्यक्ति की संगति की है तब-तब तुम्हारे जीवन में कुछ न कुछ अहित हुआ है तुम्हारी निगाह नीची हुयी है तब-तब तुमने पश्चाताप किया है और जब-जब तुम किसी अच्छे पुरुष के साथ में लगे हो, साधु की सेवा में लग गये तब लोगों ने तुम्हारी प्रशंसा की है, कीर्ति गायी है, गुणगान किया है। यहाँ तक कि 10 मिनट के लिये धोती दुपट्टा पहनकर साधु का कमण्डल पकड़ लिया चौके से निकल कर मंदिर तक भी ले आये इतने में 10-5 लोगों ने तुम्हारे चरण छू लिये साधु की संगति का ये प्रभाव है और जो तुम्हारा मित्र था चोरी या

लूटपाट में पकड़ा गया तुम उससे मिलने गये तो पुलिस वालों ने तुम्हारा नाम भी नोट कर दिया। तुम्हारा न कुछ लेना न देना फिर भी क्षण मात्र की कु:संगति जब-जब भी हुयी तब-तब तुम्हारी निगाह नीची हुई है। तब-तब कष्टों को आमंत्रित किया है और जब-जब साधु/सज्जन की संगति की है तब-तब दुनिया ने तुम्हें साधु या सज्जन आदमी समझा है।

दुष्ट व्यक्ति क्या कभी तुम्हें शांति दे सकता है दुष्ट व्यक्ति के मिलने पर तो सिर पकड़ के रोना पड़ता है एक बार दुष्ट की संगति में चले गये जीवन भर के लिये कलंक का टीका लग जाता है। सीता रावण के घर रहकर आयी, थी तो निर्दोष किन्तु अयोध्या वालों ने क्या कहा-कि जब रामचन्द्र जी सीता को रख सकते हैं जबकि सीता रावण के यहाँ रहकर आयी है तो हम क्यों नहीं, अयोध्या की महिलायें कहने लगी-तुम हमारे राजा से भी बड़े हो गये जब वो सीता को रख सकते हैं तो हम यदि दूसरे पड़ौसी के यहाँ रह आये तो हमें क्यों निकालते हो। तो इससे धर्म की हानि होने लगी, इसलिये धर्म की रक्षा के लिये रामचन्द्र जी को कोई और उपाय नहीं सूझा उन्होंने कहा परित्याग करूँगा और अग्नि परीक्षा के उपरांत सीता को स्वीकार करने की बात कही।

महानुभाव ! **ज्ञात्वेति तत्त्याग विधिर्विदेय:** इस प्रकार जानकर दुष्ट पुरुषों की संगति को त्यागना चाहिये। दुष्ट पुरुषों की संगति से आज तक किसी का अच्छा नहीं हुआ है बुरा ही हुआ है। अग्नि की संगति से कभी शीतलता नहीं मिली, जहर खाकर के अमर कोई नहीं हुआ। तो दुष्ट की संगति के बारे में आचार्यों ने लिखा है कि वह दु:ख ही दु:ख का कारण है, संक्लेशता का कारण है जीवन में जहर का कारण है, इसलिये पहले जीवन में से जहर को निकाल दो फिर सत्संगति का अमृत हमारे जीवन में आयेगा। महानुभाव आप भी दुष्ट

संगति से निकलकर सत्संगति में आयें क्योंकि बिना सत्संगति के सुख शांति का प्रादुर्भाव तुम्हारे जीवन में नहीं आ सकता। अत: दुष्ट संगति का परिहार करें।

''शांतिनाथ भगवान की जय''

साता की विधि

संसार में ऐसा कोई आदमी नहीं है जो सुख शांति की कामना, भावना, कल्पना नहीं करता हो। प्रत्येक प्राणी सुख के बारे में सोचता है। वह निरंतर यही चाहता है कि मैं असाता वेदनीय से बचूँ। असाता वेदनीय का उदय आर्त्त परिणाम का कारण बन जाता है। साता वेदनीय का उदय निगोदिया से केवली पर्यंत सभी चाहते हैं यद्यपि केवली भगवान को साता वेदनीय से कुछ लेना देना नहीं है, मोहनीय कर्म का अभाव हो जाने पर उसकी प्राप्ति हो गयी किन्तु फिर भी अघातिया कर्म 4 शेष रह गये हैं तो असाता वेदनीय उनके उदय में नहीं आती साता वेदनीय आती है असाता भी साता रूप परिवर्तित हो जाती है। किन्तु साता वेदनीय कर्म का उदय आये कैसे? जैसे किसी टंकी में कीचड़ मिश्रित पानी भर दिया जाये तो टोंटी में से क्या निकलेगा, वही निकलेगा। यदि स्वच्छ जल भर दिया जाये तो स्वच्छ ही निकलेगा। जल यदि नीला भरा है तो नीला निकलेगा, पीला भरा है तो पीला, हरा तो हरा, काला तो काला। यदि उसमें दूध भरा है तो दूध, घी भरा है तो घी, तेल भरा है तो तेल निकलेगा। साता वेदनीय कर्म का उदय आये ये सब चाहते हैं किन्तु साता वेदनीय कर्म का उदय कैसे आये ये हम कम सोच पाते हैं।

पुण्यस्य फल मिच्छन्ति पुण्यं निष्ठन्ति मानवाः।
फलं पापस्य नेच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः॥

संसार का प्रत्येक प्राणी पुण्य का फल चाहता है किन्तु पुण्य कार्य को करना नहीं चाहता। संसार का कोई प्राणी पाप के फल को नहीं चाहता। किन्तु पाप के कर्मों को छोड़ना भी नहीं चाहता।

पुण्य कार्य किये बिना पुण्य का फल कैसे प्राप्त हो और पाप करते हुये पाप के फल से कैसे बच सकोगे? आवश्यक है कि पुण्य

कार्य करें और पाप कार्यों से बचें। जीवन में साता वेदनीय के उदय के लिये आवश्यक व अनिवार्य शर्त है कि आपकी आत्मा के प्रदेशों में साता वेदनीय कर्म बंधा हो तभी तो वह उदय में आ सकता है। यदि आत्मा के प्रदेशों में साता वेदनीय कर्म बंध को प्राप्त नहीं हुआ है तो वह उदय में नहीं आ सकता, असाता वेदनीय साता वेदनीय रूप हो सकते हैं किन्तु तभी जब वर्तमान काल में साता वेदनीय कर्म का बंध चल रहा हो तब। असाता के उदय में साता भी असाता हो जाता है। साता वेदनीय का बंध कैसे होता है साता वेदनीय कर्म के बंध के क्या-क्या कारण हैं आचार्य उमास्वामी महाराज, आचार्य पूज्यपाद स्वामी, आचार्य अकलंक स्वामी, आचार्य विद्यानंद स्वामी इत्यादि आचार्यों ने सातावेदनीय कर्म बंध के कारण समान कहे। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने भी तत्त्वार्थ सार में कहे। वे कौन-कौन से कारण हैं संक्षेप में 4-5 कारण आपको बताते हैं हो सकता है संक्षेप में कही बात आपको ज्यादा जल्दी समझ में आ जाये विस्तार से दृष्टांतों से समझें तो शायद देर लगे। एक कुण्टल दूध यदि आपको दिया जाये तो विरले व्यक्ति दही जमाकर के मथकर के घी निकाल पायें, आलस में छोड़ देंगे दूध और खराब हो जायेगा। यदि हम निकला निकलाया घी दे देंगे तो निकालकर चाट लोगे एक-दो अंगुली। तो हम संक्षेप में बात कह रहे हैं-

भूत-व्रत्यनुकंपादान सराग-संयमादि-योगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य।

आचार्य उमास्वामी जी महाराज ने भूत अनुकम्पा और व्रती अनुकम्पा दो बात कही। यदि तुम्हारे सामने कोई एक महाव्रती साधु है और दूसरा कोई असंयमी, अव्रती या माना की कोई कदाचारी व्यक्ति है और तुम्हारे पास शुद्ध भोजन है, तो पहले किसको देना चाहोगे? ''महाव्रती'' को। यदि अणुव्रती-महाव्रती है तो उसको तुम

पहले अपनी वस्तु देना चाहोगे। अब तुम्हारे पास कोई महाव्रती नहीं है कोई अणुव्रती नहीं है, सामान्य व्यक्ति है यदि उसे न दोगे तो वस्तु नष्ट हो जायेगी, खराब हो जायेगी, उसको पता है सुबह तक यह खराब हो जायेगी तो शाम को ही किसी भिखारी को दे देना उचित समझोगे। चाहे शत्रु ही क्यों न हो। धर्मात्मा के मन में ही यह भाव आता है कि चाहे शत्रु ही क्यों न हो, मैं खा नहीं रहा मेरा पेट भरा है, सामने वाला भूखा है इसे दे दूँगा तो इसका पेट भर जायेगा, नहीं तो कल तक वस्तु खराब हो जायेगी। तो धर्मात्मा उसे खराब होने से पहले किसी को दे देगा किसी के काम आ जायेगी, यह कहलाती है भूतानुकम्पा। अनु अर्थात् पीछे 'कम्पा'-कम्पायमान हो जाना। जिस घटना को या दु:खी व्यक्ति को देखकर के चित्त कम्पायमान हो जाये वह अनुकम्पा, जिससे हृदय करुणा से, दया से द्रवित हो जाये। चाहे सूर्य का उदय देखकर मोम न पिघले, घी न पिघले किन्तु दु:खी व्यक्ति की आँखों के आँसू देखकर वह पिघल जाये। किसी के आँसू में वह तेज ऊष्मा हो सकती है जो ऊष्मा सूर्य के प्रकाश में न हो जिससे हृदय पिघल जाता है।

दीन दु:खी को देख दृग कोर नम हो जावें

दीन दु:खी जीवों को देखकर आँखों के किनारे नम हो जायें। जिसकी आँखें नाट्य रूप किसी के दु:ख को देखकर भी गीली हो जायें इससे पता चलता है कि वह व्यक्ति कितना संवेदनशील है और जो दूसरे का गला काट दे फिर भी मुख से 'उफ' न निकले तो बस यही कहना पड़ेगा कि भगवान ने उसका हृदय इतना कठोर कैसे बना दिया। अनुकम्पा तो वही है जो दूसरों के दु:ख को देखकर द्रवित हो जाये। जो व्यक्ति दूसरों की हिंसा करके चैन से खा-पी रहा हो उसके मुख में ग्रास कैसे चला जाता है जबकि रोते हुये व्यक्ति को देखकर के तुम्हारी भूख चली जाती है। तुम लाख कोशिश करो ग्रास तुम्हारे मुँह में जाता नहीं है, ये धर्मात्मा व्यक्ति का लक्षण है, भूतानुकम्पा।

अगली बात कही साता वेदनीय का आश्रव कैसे होता है-दान देने से भी होता है। सत्पात्रों को, अच्छे क्षेत्र में दान देना। जो आपके पास दौलत है सब भगवान की बदौलत है। यदि पाप का उदय चल रहा है तो दो-दो पैसे के लिये व्यक्ति मुहताज हो जाता है। पुण्य के उदय में एक व्यापार करता है तो उसमें लाभ हो जाता है और पाप के उदय में चार व्यापार भी करता है तो उसमें भी घाटा हो जाता है। महानुभाव! दान देने से लक्ष्मी कभी घटती नहीं है। धर्म के क्षेत्र में दान देने से नियम से लक्ष्मी बढ़ती ही बढ़ती है आज नहीं तो कल बढ़ेगी, यदि घट रही है तो समझो बहुत तीव्र कर्म का उदय चल रहा है दान देकर तुमने उस कर्म को थोड़ा मन्द कर दिया है उस पैसे को देकर तुम्हारी लक्ष्मी जो घटती जा रही थी अब घाटा थोड़ा कम हो गया। पहले दान देने से थोड़ा घाटा कम हुआ, फिर सम्पत्ति न घटी न बढ़ी, पुनः दान देने से बढ़ना प्रारंभ हो गया और पहले जब सम्पत्ति बढ़ रही थी तो वह दान देने से और बढ़ने लगी। तो दान से भी साता वेदनीय का आश्रव होता है

सराग-संयमादि-योगः साता वेदनीय का बंध, आश्रव वही करता है जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पाँचों का पालन करता है जो इन व्रतों का पालन नहीं कर पाता उनके जीवन में असाता वेदनीय का बंध आश्रव होता है। जो व्रती और संयमी बन गये हैं उनके जीवन में असाता का आश्रव प्रायः नहीं होता अधिकांशतः साता का आश्रव होता है, असाता का आश्रव तो क्रूर परिणामों से, रोने-धोने से, संक्लेशता करने से होता है। अगली बात कही-

'क्षांति'-क्रोध मान माया लोभ इन चार कषायों का उपशमन करने से क्षांति परिणाम होते हैं। क्रोध का शमन करने से शांति भाव आता है किन्तु चारों कषायों के उपशमन से क्षांति भाव आता है तो क्षांति भाव भी साता वेदनीय के आश्रव का कारण है, अगली बात कही-

इष्ट पदार्थों की सम्प्राप्ति, जो भी तुम्हें व्यक्ति/वस्तु अपने जीवन में इष्ट लग रहा है जिसके लिये आप चाह करते हो कि उस वस्तु की मुझे प्राप्ति हो जाये तो साता वेदनीय कर्म के उदय में तुम्हें व्यक्ति भी मिल जायेगा और वस्तु भी मिल जायेगी और असाता का उदय चल रहा है तो न व्यक्ति मिलेगा और न ही वस्तु मिलेगी। कई बार व्यक्ति कहता है मैंने अपनी पूरी जिंदगी लगा दी किन्तु मुझे वह वस्तु मिल नहीं पायी। पूरा जीवन जिसने दाव पर लगा दिया किन्तु वह उस वस्तु को प्राप्त नहीं कर पाये। साता वेदनीय के उदय से ही इष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है। अगली बात-

'गुरुभत्तो'-पंचपरमेष्ठी की भक्ति करने से सम्पत्ति नियम से वृद्धि को प्राप्त होती है, जीवन में सब अनुकूलतायें बनती हैं जिन्होंने गुरु भक्ति की है उनसे जाकर के पूछो। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि उनके खजाने भरे हैं या खाली किन्तु इतना अवश्य कह सकता हूँ कि उनकी आत्मा में बड़ी शांति है साधुओं के पास पहुँचकर क्या नहीं मिलता यश नहीं मिलता है कि प्रतिष्ठा नहीं मिल रही है कि शांति नहीं मिल रही है कि सुख नहीं मिल रहा कि इष्ट वस्तु नहीं मिल रही, क्या नहीं मिल रहा सब कुछ मिलता है। व्यक्ति साता के उदय में ही धर्म कर पाता है तीव्र असाता में भी धर्म नहीं हो सकता, लोग कहते हैं-

दुख में सुमिरन सब करें सु:ख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे तो दु:ख काहे को होय॥

ये बात ठीक है किन्तु इसमें ये बात और ज्यादा ठीक है कि दु:ख में भी मन धर्म में लगता नहीं है उस दु:ख में भी थोड़ी साता का उदय आयेगा तभी धर्म कर पायेगा अन्यथा तीव्र पाप कर्म के उदय में मन धर्म में नहीं लगता और कोई करना चाहे तो धर्म हो नहीं पाता उसके लिये थोड़ी सी साता तो चाहिये जिससे भगवान का नाम

ले सके पूजा-पाठ कर सके, गुरुओं की सेवा कर सके, अपने परिणामों को शांत रख सके, दानादि दे सके, क्या आप सभी चाहते हैं कि आपके जीवन में साता का उदय आये। यदि सही में चाहते हैं तो इन 4-5 कारणों को अपने जीवन में अंगीकार करने का पुरुषार्थ करो।

व्रती अनुकम्पा, जीवानुकम्पा, व्रतयोग युक्त अवस्था, क्षांतिमय परिणाम, दान, गुरुभक्ति-ये छः बातें आचार्य नेमिचंद स्वामी जी ने, अकलंक स्वामी जी ने, विद्यानंद स्वामी जी ने, पूज्यपाद स्वामी जी ने, उमास्वामी जी इत्यादि आचार्यों ने बतायीं। ये सब बातें आपके जीवन में आयें, आप साता के फल को प्राप्त करें मैं आपके प्रति भावना भाता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान की जय''

ज्ञानावरणी कर्मास्त्रव के कारण

संसार का प्रत्येक प्राणी बहुत कुछ जानना चाहता है जब तक जिसे जानता नहीं है तब तक उसे जानने की ललक रहती है, ज्यों-ज्यों उसका ज्ञान बढ़ता चला जाता है त्यों-त्यों उसे अंदर में आनंद की अनुभूति होती है। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि जब तक जिस वस्तु के बारे में जान नहीं पा रहा था तब तक बहुत ललक थी। उसे प्राप्त करने के लिये उसने बहुत परिश्रम और प्रयास किया था किन्तु ज्यों-ज्यों उसे उस ज्ञान की प्राप्ति हुयी त्यों-त्यों उसे अलग वस्तु के ज्ञान का मूल्य ज्यादा दिखाई देने लगा और जो जान गया उसका मूल्य कम दिखाई देने लगा। क्रमशः आगे बढ़ते हुये उसने जीवन में जो कुछ भी अर्जित किया, अर्जन करने के उपरांत उसका सही सदुपयोग नहीं कर सका इसलिये अर्जन किया हुआ ज्ञान भी विस्मृत होता चला गया। कई बार व्यक्ति जब उसके पास धन नहीं था तब धन कमाने के लिये मनसा, वाचा, कर्मणा प्रयास किया। जब धन नहीं था तब दो-दो पैसे का भी बड़ा उपयोग करता था एक पैसे का भी दुरुपयोग नहीं करता था। जब उसके पास कुछ धन आ गया तब सैकड़ों रुपयों का भी दुरुपयोग कर देता है।

महानुभाव! व्यक्ति के पास जब कोई वस्तु नहीं होती है या जब वस्तु का अभाव होता है तब उस वस्तु को प्राप्त करने के लिये अपने मन वचन काय की पूरी शक्ति लगा देता है। चेतना का पूरा उपयोग उसी में लगा रहता है किन्तु प्राप्त करने के उपरांत संसार में ऐसे विरले व्यक्ति ही होते हैं जो उसका सदुपयोग कर पायें।

यूँ तो ज्ञान प्रत्येक आत्मा का स्वभाव है ज्ञान से रहित संसार में कोई आत्मा नहीं हो सकती क्योंकि ज्ञान आत्मा का अविनाभावी लक्षण है ज्ञान के बिना आत्मा और आत्मा के बिना ज्ञान असंभव है।

जैसे अग्नि के बिना उष्णता, उष्णता के बिना अग्नि असंभव है ऐसे ही ज्ञान आत्मा का अविनाभावी लक्षण है उस ज्ञान को आत्मा से कभी अलग नहीं किया जा सकता और आत्मा को कभी ज्ञान से अलग नहीं किया जा सकता।

महानुभाव ! जब हमारा स्वभाव ज्ञान है तो वह हमें प्राप्त क्यों नहीं हो पा रहा? मुख्य कारण यह है कि हम ज्ञान को प्राप्त ही कहाँ करना चाह रहे हैं क्योंकि हमें अज्ञानता में रस आने लगा है इसलिये ज्ञान का सम्यक्अर्जन नहीं करना चाह रहे। जो भी प्राप्त कर लिया है उसे ही पचाने में असमर्थ हैं तो आगे खाने की इच्छा नहीं होती। जो व्यक्ति बकरी का दूध पचाने में असमर्थ हो वह गाय का दूध कैसे पचा पायेगा, भैंस का दूध कैसे पचा पायेगा, रबड़ी खिला दो तो अस्वस्थ हो जायेगा और कहीं शुद्ध घी पिला दिया तो कहेगा भईया ! मैं तो बीमार पड़ जाऊँगा कहीं भूल से एक बार पी लिया तो उसे अंदर से ऐसी ग्लानि आयेगी कि जिसे देख सुनकर के दूर से ही भागेगा। कौन नहीं जानता घी पौष्टिक होता है, घी पाचक होता है, घी श्रेष्ठ खाद्यान्न माना जाता है अन्य खाद्य पदार्थों की अपेक्षा से, किन्तु फिर भी संसार के प्राणी घी क्यों नहीं खाते ? दूध अच्छा होता है फिर भी शुद्ध दूध क्यों नहीं पीते। जो चीज बहुत अच्छी है उस बहुत अच्छी चीज को पाना बहुत कठिन है और पाकर के खाना और कठिन है और खाकर के पचाना और ज्यादा कठिन है। महानुभाव ! हीरा बहुत महत्वपूर्ण होता है, कीमती होता है तो सभी अपने पास हीरा क्यों नहीं रखते क्योंकि उसे प्राप्त करना बड़ा कठिन है, यदि प्राप्त भी हो जाये तो उसकी सुरक्षा कर पाना कठिन है।

सुरक्षा करने में जीवन व्यतीत हो जायेगा और सब तो भूल ही जायेगा। हीरा आ जायेगा तो सोचेगा इसे बेचकर कोठी खरीद लूँ, जितने भी भोग विलास के साधन हैं उन्हें प्राप्त करूँ। तो उस हीरे को

सामान्य व्यक्ति नहीं पचा सकता अपने पास नहीं रख सकता। कोई 1 लाख रुपये की एक ड्रेस सिलवाता है और कोई व्यक्ति 1 लाख रूपये में सौ ड्रैस सिलवाता है तो अपनी-अपनी औकात है जिसकी औकात एक हजार रुपये की ड्रेस पहनने की है एक लाख की ड्रेस तुम उसे भेंट भी कर दो जीवन में उसे पहन नहीं पायेगा, देख-देखकर खुश होता रहेगा पहनने का आनंद नहीं ले पायेगा। ऐसे ही ज्ञान की बहुत अच्छी-अच्छी बातें कभी मन में भाव आ जाये कि हम उसे प्राप्त कर लें और वचनों से कह रहे हैं कि हमें भी ज्ञान प्राप्त हो जाये किंतु होता ये है कि हम उस ज्ञान को व्यवहार में नहीं लाते और जो मुद्रा व्यवहार में नहीं आती वह प्रचलन से बाहर हो जाती है जो व्यवहार में चलती है वह प्रायःकर के आती जाती रहती है।

आज वर्तमान काल में एक का सिक्का, दो के सिक्के, पाँच, दस के सिक्के जो पहले चलते थे वे अब इतने नहीं चलते, किसी के पास रखे होंगे तो वे रखे ही नष्ट हो जायेंगे या पहले हजार का नोट न चलकर सिक्का चलता था, पहले सोने की मोहरें चलती थीं किंतु बाद में लोगों ने लोभ के कारण जमीन में छिपा कर रख दीं, दबा करके रख दीं। वो मुद्रा प्रचलन के बाहर हो गयीं और दूसरी मुद्रा पुनः प्रचलन में आ गयीं और जो चीज प्रचलन में रहती है उसकी वृद्धि होती चली जाती है। ज्यों-ज्यों आवश्यकता बढ़ेगी मांग बढ़ती चली जायेगी त्यों-त्यों उसका आविष्कार होगा नयी-नयी और आती जायेंगी और जो चीज प्रचलन में है ही नहीं चाहे कितनी भी महत्वपूर्ण हो जब उसकी डिमांड घटेगी तो वस्तु आना बंद हो जायेगी। आपके जीवन में भी सामान्य चलन में जो ज्ञान चल रहा है वही ज्ञान केवल काम में आ रहा है शेष ज्ञान तुम प्राप्त भी कर लो यदि उसका सतत् अभ्यास न किया सदुपयोग नहीं किया तो वह सार्थक न हो पायेगा, विस्मृत हो जायेगा। टूण्डला में सन् 2000 के चौमासे में कई लोगों ने

रयण सार याद किया आज यदि उनसे सुनें तो शायद एक भी न सुना पायें, व्यक्ति कहता है हम भूल जाते हैं हमें याद नहीं होता, अरे ! भईया ऐसे कैसे नहीं होता यहाँ पर बैठे किसी भी व्यक्ति से उसके रिश्तेदारों के नाम पूछो तो एक नहीं 20-30, 40 और कोई कोई तो 100 तक नाम गिना देगा और यदि किसी से यह पूछ लो कि 24 तीर्थंकर को छोड़ मात्र 20 केवली के नाम बताओ तो अच्छे-अच्छे अपना सिर खुजाने लगेंगे। तो महानुभाव ! व्यक्ति कहता है कि हमें याद नहीं होता, जो नाम, जो पाठ प्रचलन में रहते हैं वे प्राय:कर याद रहते हैं, जो पूजायें आप प्रतिदिन करते हो वे आपको याद हो जाती हैं। कई व्यक्ति ऐसे भी हैं जो नेत्रहीन हैं उन्हें बहुत सारी पूजायें याद हैं, भजन कवितायें बनाते हैं अपने रविन्द्र कुमार जी इतने अच्छे गीतकार संगीतकार थे। तो व्यक्ति के पास शक्ति है याद करने की और शक्ति तुम्हारी भी है याद करने की, तुम्हारी शक्ति का दुरुपयोग बहुत हो रहा है। आँखों से जितना हम देख रहे हैं उतना आँखों के माध्यम से जा रहा है, जितना हम कानों के माध्यम से सुन रहे हैं उतना कानों से जा रहा है जो व्यक्ति अपनी आँखों का कानों का उपयोग नहीं कर रहा है उसकी स्मरण शक्ति और बढ़ जायेगी।

तुम जीवन में वे पदार्थ ज्यादा देखते हो जिनसे तुम्हें कुछ लेना-देना नहीं, जीवन में वे बातें तुम ज्यादा सुनते हो जिनसे तुम्हें कुछ लेना देना नहीं, जीवन में वह काम तुम ज्यादा करते हो जिन कामों के करने से तुम्हारा जीवन सफल और सार्थक नहीं बन सकता यही कारण है कि आत्मा की शक्ति का दुरुपयोग हो रहा है और हम चाहते हैं हमें याद हो जाये। तत्वार्थ सूत्र तुमने कितनी बार पढ़ा है किन्तु साथ में चार काम और चलते हैं इधर अभिषेक भी देख रहे हैं, एक हाथ से जाप लग रही है और मंदिर में कोई दर्शन करने वाली नयी बाई, नया लड़का या लड़की आ जाये तो उसकी पूरी जानकारी

भी ले लेते हैं फिर सोचते हो कि हमें याद हो जाये। अरे ! उपयोग को केन्द्रित तो करो, याद क्यों नहीं होगा।

आपको बहुत सारी बातें सहज में याद हो जाती हैं बचपन में जब मस्तिष्क की सिलेट कोरी थी जो लिख जाता था स्थायी लिख गया। अब वह सिलेट इतनी गंदी हो गयी है कि उस पर लिखा हुआ साफ नहीं हो पाता। ब्रेन वॉश करना जरूरी है। ब्लैक बोर्ड जब खराब हो जाता है तब दुबारा उस पर पेंट करना जरूरी होता है केवल सूखे कपड़े से साफ करने से काम नहीं चलेगा, ऐसे ही हमें अपनी स्मृति की सफाई करनी है। जो बात बुरी है उसे भूल जाओ किसने मुझसे क्या कहा। उसने मुझे गाली दी ये बातें यदि दिमाग की सिलेट में अंकित हैं उस सिलेट में कहीं जगह ही नहीं बची जैसे वृषभगिरि पर भरत चक्रवर्ती नाम लिखने गया उसने देखा जगह ही नहीं बची कि कहाँ नाम लिखे फिर उसे किसी दूसरे का नाम मिटाना पड़ा तब उसने अपना नाम लिखा। ऐसे ही तुम्हारी चित्त की सिलेट पर कहीं जगह ही नहीं बची कि धर्म की चार बात कहीं लिख जायें कुछ पुरानी बातें मिटाओ, गालियाँ मिटाओ, बैर, विद्वेष, वैमनस्यता के व्यवहार को दूर करो, अहंकार के पहाड़ को हटाओ, मायाचारी को दूर भगाओ कुछ इसमें से मिटाकर के तो अलग करो जब कुछ जगह खाली हो जायेगी तो उसमें कुछ लिखा जा सकता है।

किसी बर्तन में पहले से ही गंदा पानी भरा है स्वच्छ जल भरना चाहो तो कैसे भरा जायेगा, पहले गंदा पानी निकालना पड़ेगा, ऐसे ही हमारे मस्तिष्क में बहुत सारी ऐसी बातें भरी पड़ी हैं जिन बातों से हमें कुछ लेना–देना नहीं। ये जानिये चलना हमें एक रास्ता है किन्तु जानकारी हम बीस रास्ते की रख रहे हैं।

ये हमारी आदत बन गयी है। बैल की तरह से अपनी टोकरी में अपना भूसा रखा हुआ है फिर भी वह दूसरे की टोकरी में मुँह मारेगा।

ये आदत है जो हमारा विषय है उसे याद न करके हमारे मन में एक पट्टी सी चलती रहती है जैसे टी.वी. में कोई भी कार्यक्रम आ रहा हो जिसमें नीचे एक पट्टी सी चलती रहती है। उसका उस कार्यक्रम से कोई लेना देना नहीं है पट्टी दिल्ली की चल रही है। समाचार चाहे पूरे विश्व में से कहीं का हो किन्तु पट्टी उसके ही ऐड की चलती चली आ रही है, ऐसे ही हमारे दिमाग में निरन्तर एक पट्टी चलती रहती है आप कभी भी देखना जब आप एक काम करते हो तब एक काम करते ही नहीं हो दूसरा विचार आपके दिमाग में चलता ही रहता है यहाँ तक कि सोते समय में भी, इसीलिये तो स्वप्न भी देख लेते हो। तो एक पट्टी निरंतर चलती रहती है उसमें भी तुम्हारी आत्मा की शक्ति खर्च होती रहती है, वह पट्टी बचपन में नही चलती थी इसलिये जल्दी याद हो जाता था। अब वह पट्टी निरंतर चल रही है ऐसा मानकर चलें कि हम कमा तो रहे हैं एक लाख रुपये किन्तु 90 हजार हमारा कहीं और कटता चला जा रहा है। हाथ में 10 हजार ही आ पा रहे हैं।

तो विषयों की, कषायों की पट्टी चल रही है, वासनाओं की वह पट्टी आत्मा के उपयोग को क्षीण करती जा रही है सही उपयोग वास्तव में कर नहीं पा रही। जब एक व्यक्ति स्वतंत्र था तब मानो वह 70% काम कर लेता था पर अब जब उसके अण्डर में 40 व्यक्ति हैं अब वह काम कुल 60% कर पा रहा है वे 40 व्यक्ति तो अपना काम कर रहे हैं किन्तु उनको निर्देश देना पड़ रहा है। तुम ऐसा करो, तुम ऐसा करो इसलिये वह अपना काम नहीं कर पा रहा है। जब आप अकेले थे तब आपके पास एक अकेले खुद की चिंता थी, जीवन साथी को स्वीकार किया तो चिंता खुद से ज्यादा जीवन साथी की हो गयी। खुद की चिंता पहले माना कि 80% थी 20% और चिंतायें थी जीवन-साथी को स्वीकार करते ही खुद की चिंता 8% रह गयी जीवन

साथी की 72% हो गयी और यदि एक बेटा हो गया तो खुद की चिंता 6%, जीवन साथी की 60% और बेटे की चिंता 12% और बढ़ गयी। तो ऐसे ही जितने-जितने विकल्प आते जाते हैं हमारा खुद का ख्याल कम होता चला जाता है इसलिये योगियों ने जब भी ध्यान किया एकान्त में जाकर ही किया, ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ कोई आदमी भी मिले तो वह आदमी उन्हें नहीं जानता हो, वे उन्हें नहीं जानते हों। पशु-पक्षी, वृक्षों के बीच में उन पर कोई नाम नहीं लिखा वहाँ आराम से जाकर बैठ गये जहाँ राग-द्वेष की प्रवृत्ति करने वाला कोई न हो। तो महानुभाव ! हमें याद क्यों नहीं होता, इसके कारण आचार्य उमास्वामी महाराज ने बताये-

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञान दर्शना-वरणयोः।

आचार्य भगवन् उमास्वामी जी महाराज बहुत बड़े प्रज्ञ पुरुष थे। उनकी बुद्धि के बारे में सोचना भी हमारी कल्पना के परे है। जिस समय कागज कलम तक नहीं था उस समय काँटे की नोक से उकेर-उकेर कर ताड़ पत्तों पर ये सूत्रग्रंथ लिखे। जंगल में रहकर उन्होंने साधना की, एकान्त में गुफाओं में रहकर उन ग्रंथों का लेखन किया। कितनी प्रकृष्ट बुद्धि रही। आज के वैज्ञानिक भी उनके एक-एक सूत्र का अर्थ समझने में असमर्थ हैं जैसे कहीं बिंदु में सिंधु भर दिया हो, गागर में सागर ही नहीं सरसों के दाने में छेद करके असंख्यात समुद्रों का पानी भर दिया हो। कैसी प्रज्ञा के धनी रहे आचार्य उमास्वामी जी महाराज, उन्होंने संक्षेप में कहा-व्यक्ति ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी कर्म का बंध कैसे करता है क्योंकि पहले बंध के कारणों से, साधनों से बच जायेंगे तो ज्ञानावरणी दर्शनावरणी कर्म का क्षयोपशम प्राप्त हो सकता है, हम अनंतज्ञान, अनंत दर्शन को प्राप्त कर सकते हैं। पहले ज्ञानावरण और दर्शनावरण द्रव्य को जो हम इकट्ठा कर रहे हैं, कर्मों को अपनी आत्मा से चिपकाते चले जा रहे

हैं उन कर्मों का चिपकाना पहले बंद तो करो क्योंकि कर्मों का पानी आता रहेगा, कर्मों का जहर आत्मा में आता रहेगा तो अमृत अपना असर नहीं दिखा पायेगा इसलिये पहले जहर को भरना बंद करें फिर अमृत का आस्वादन करें। वह जहर जिन साधनों, जिन कारणों से आ रहा है इसके बारे में सूत्र से बात कही। इन्हीं सूत्रों पर अमृतचन्द्रस्वामी जी ने वार्तिक और वृत्तियाँ लिखी हैं।

श्री भास्करनंदी आचार्य ने भी तत्त्वार्थ वृत्ति में बड़ा खुलासा किया है। तत्वार्थ सूत्र का यह छटवाँ अध्याय ऐसा है मानों महाभारत का 18 हजारवाँ सर्ग जिसे जानने के उपरांत और कुछ जानने की इच्छा नहीं होती सब कुछ जान लिया, जैसे समयसार का प्रथम जीवाधिकार जानने के उपरांत आगे जानने की इच्छा ही नहीं होती, ऐसे ही तत्वार्थसूत्र का छटवाँ अध्याय जानने के बाद लगता है और अब क्या रह गया है जानने के लिये, सब कुछ तो जान लिया। कर्मों के बारे में जान लिया, कर्मों का आश्रव कैसे होता है, कर्मों का बंध कैसे होता है जिन कारणों के माध्यम से कर्म आते हैं ऐसे कार्यों को नहीं करना यह जान लिया बस, अब तो मानने की बात रह गयी है। तो इस छटवें अध्याय के दसवें सूत्र में कहा 'तत्प्रदोष' किसी के ज्ञान में दोष लगाना निह्नव-जिस पुस्तक/शास्त्र के माध्यम से ज्ञान प्राप्त किया था उसका, गुरु का नाम छिपाना।

मात्सर्य-ईर्ष्या का भाव रखना।

अंतराय-किसी के ज्ञान में विघ्न डाल देना

उपघात-ज्ञान नष्ट करना, सही ज्ञान में दोष लगाना।

ये ज्ञानावरणी दर्शनावरणी कर्म के आश्रव के कारण हैं इनके माध्यम से जीवन में कभी ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है। चाहे कितना भी प्रयास करो चाहे दिन में पढ़ो चाहे रात में पढ़ो, चाहे कुछ भी करो

यदि ये कारण रहेंगे तो ज्ञान की वृद्धि न हो सकेगी। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी के शब्दों में देख लें-

मात्सर्यमन्तरायश्च प्रदोषो निह्नवस्तथा।
आसादनोपघातौ च ज्ञानस्योत्सूत्र चोदितौ।।

मात्सर्य भाव-'ईर्ष्या करना'। ये हमसे आगे क्यों निकल रहा है, इसको इतना याद हो गया और मुझे कुछ नहीं। चलो इसको बातों में लगायें, इसकी पुस्तक गुमायें, ऐसे भावों का आना।

मेरी भावना में कहा है-**देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्ष्या भाव धरूँ।**

किन्तु ये पंक्ति पढ़ तो लेते हैं, यदि आचरण करते तो उसका फल प्राप्त हो जाता। किन्तु ईर्ष्या का परिणाम हमारा हो जाता है। किसी कक्षा में 40 विद्यार्थी पढ़ते हैं जिनमें 4 विद्यार्थी टॉप पर जा रहे हैं, 30 विद्यार्थी उत्तीर्ण हो पाते हैं और 6 विद्यार्थी अनुत्तीर्ण रह जाते हैं, तो अनुत्तीर्ण वालों को कभी टॉप वालों से ईर्ष्या नहीं रहती। किन्तु जो 36 उत्तीर्ण वाले हैं उनको आपस में ईर्ष्या होती है, जो टॉप वाले 4 हैं उनको आपस में ईर्ष्या होती है। ईर्ष्या होती है बराबर वालों से, आगे वाला तो आगे जा ही रहा है उससे ईर्ष्या करके क्या करोगे। जो बराबर के हैं, जिन्होंने साथ-साथ दौड़ना प्रारंभ किया था किन्तु वह 4 कदम आगे दौड़ रहा है उसे पीछे कैसे किया जाये, आगे देखकर के उसके पैर में लात मार दो गिर पड़ेगा तब तक खड़ा होगा तुम आगे निकल जाओगे। तो ऐसा मात्सर्य भाव कभी दूसरों के पतन का नहीं खुद के पतन का कारण होता है जब-जब भी हमने दूसरों की सम्पत्ति को देखकर ईर्ष्या की है तब-तब हमारी सम्पत्ति का ह्रास हुआ है। जब-जब भी हमने दूसरों के ज्ञान को देखकर के ईर्ष्या की है तब-तब हमारा ज्ञान ह्रासमान अवस्था को प्राप्त हुआ है। जब-जब भी हमने

किसी की सत्ता, वैभव, सम्मान, प्रतिष्ठा को देखकर ईर्ष्या की है तब-तब हमने उसका उल्टा फल प्राप्त किया है। महानुभाव ! तो यह मात्सर्य भाव ह्रासमान अवस्था को देने वाला है, ईर्ष्या करने से क्या होने वाला है, कोई तुमसे आगे बढ़ना चाह रहा है तो आगे बढ़ो, उसके लिये तुम सहयोगी बन जाओ, दूसरों के सहयोगी बन जाओगे तो नियम से तुम्हारे ज्ञान की वृद्धि होगी।

कौण्डेश ग्वाला ने मुनिमहाराज को शास्त्र दान दिया वह कौण्डेश ग्वाला आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी बने। गोविन्द नाम के ग्वाले ने भी शास्त्र दिया (कोरमणी ग्राम में) वह कौण्डेश नाम का राजा बना। और यम नाम के राजा ने पहले मुनि महाराज से विद्वेष रखा, वह ज्ञानी, तार्किक युक्तिवाद में जीने वाला राजा था। वह मुनि महाराज से शास्त्रार्थ करने के लिये गया, उनकी अविनय व अपनी महानता दिखाने के लिये गया। वहाँ पहुँचते ही मुनिराज की अविनय करने से ऐसा पाप कर्म उदय में आया कि उसका पूरा ज्ञान लुप्त हो गया, बाद में पश्चाताप करते हुये मुनि दीक्षा ले लेता है। मुनिदीक्षा लेकर तपस्या करते हुये भी केवल तीन खण्ड श्लोक याद हुये। शिवभूति नाम का सेठ जिसने मुनिमहाराज का चौमासा कराया बड़ा भक्त था न जाने कैसे कब-कहाँ मुनिराज की अविनय हो गयी, ज्ञान की, ज्ञानी की अविनय हो गई, ऐसा ज्ञानावरणी कर्म का उदय आया बारह वर्ष में भी णमोकार मंत्र को याद नहीं कर पाये। किन्तु तपस्या करके पुनः कर्मों का क्षय कर बाद में केवली हुये। एक उदाहरण और आता है श्वेत संदीपन नाम के मुनिराज का। वे श्वेतसंदीपन मुनिराज अध्ययन करते और कराते थे और इसके माध्यम से उनकी ज्ञान की बहुत वृद्धि हो रही थी किन्तु उन्होंने देखा उनके गुरुमहाराज उन्हें अच्छे से पढ़ाते नहीं हैं तो उन्हें अन्य गुरुभाईयों से गुरु के प्रति ईर्ष्या होने लगी, ईर्ष्या होने से उन श्वेत संदीपन नाम के मुनि का पूरा शरीर काला पड़ गया

और जो ज्ञान था वह विस्मृत हो गया उनका नाम फिर कालसंदीपन हो गया।

महानुभाव ! अग्निभूति, वायुभूति का सुना होगा, जो वायुभूति कुत्ती, सूकरी आदि बनकर के दुर्गन्धा, चाण्डालनी आदि कन्या बनी अपने भाई अग्नि भूति से संबोध को प्राप्त करके पुनः नागसेन ब्राह्मण की पुत्री नागसेना बनी और मुनिमहाराज की विनय करने से पूर्व की स्मृति लौटकर आ गयी। ईर्ष्या करने से प्रायःकर ज्ञान घटता है और आप लोग दूसरों को ज्ञानी देखकर के उसकी प्रशंसा करना तो दूर रहा उल्टी उसकी निंदा करना प्रारंभ कर देते हो। आपके द्वारा प्रमाद वश, अज्ञानतावश, कषायवश मुनिमहाराज की, त्यागीव्रतियों की अविनय हो जाती है, धर्मात्मा, जिनवाणी, जिनवाणी के उपकरण या अन्य ज्ञान के उपकरणों की अविनय हो जाती है जो नहीं होना चाहिये। कोई व्यक्ति स्वाध्याय करना चाहता है और तुमने लाईट बंद कर दी, अब वह स्वाध्याय कैसे करेगा या उसका शास्त्र ही गुमा दिया या उसका चश्मा ही गुमा दिया तुम्हें इसमें बड़ा आनंद आ रहा है उससे ज्ञान बढ़ेगा या घटेगा?

हमने देखा है बचपन में जो विद्यार्थी बहुत होशियार थे उन्हें 2-4 बार पढ़ने से याद हो जाता था। किन्तु शरारत के कारण उन्होंने दूसरों की पुस्तक, बैग छिपाये उससे आज इस अवस्था को प्राप्त हो गये जो कुछ उन्हें याद था वो सब विस्मृत हो गया और ऐसे भी देखे जिन्होंने पूज्य पुरुषों की विनय की, शास्त्रों कि विनय की उसके प्रभाव से जो एक दिन में एक गाथा श्लोक भी याद नहीं कर पाते थे आज 10-10, 20-20 गाथा श्लोक याद कर लेते हैं। हमें याद क्यों नहीं होता ? इसलिये नहीं होता क्योंकि जो याद करने का तरीका है उसे हम अपनाते नहीं। हम चलते है भूलने के मार्ग पर और चाहते हैं याद हो जाये, हम चल तो उस रास्ते पर रहे हैं जिस पर हमारा ज्ञान नष्ट हो किन्तु चाहते हैं हमारे ज्ञान की वृद्धि हो जाये।

महानुभाव ! मात्सर्य भाव रखना, दूसरों से द्वेष करना, द्वेषवत् दूसरों को बताना नहीं, कोई पूछने के लिये आया तुमने बताया नहीं कह दिया मेरे पास टाईम नहीं या मुझे नहीं आता है। अगर जानते हुये भी नहीं बता रहे हो तो बेटा आज तो तुम जान रहे हो, जब तुम्हारे ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम घट जायेगा, ज्ञानावरणी कर्म का उदय आ जायेगा तब जो जानते हो वह भी भूल जाओगे। इसलिये कभी बताने में आना-कानी मत करो।

अगली बात-'अन्तराय'-विघ्न डालना, किसी भी प्रकार से विघ्न डालना, ऐसे कारण उपस्थित करना जिससे किसी के ज्ञान में अन्तराय पड़ रहा है तो दूसरों के ज्ञान में अंतराय डालने से अपने ज्ञान का क्षयोपशम घटता है। जिससे 100 बार याद करने पर भी याद नहीं होता है।

अगली बात-'प्रदोष'-प्रदोष का आशय है किसी के सम्यग्ज्ञान को सुनकर ईर्ष्या करना। दो विद्वान् कहीं पर प्रवचन देने के लिये आये, सेठ द्वारा व्यक्तिगत रूप से बुलाये गये थे पर्यूषण पर्व पर। एक विद्वान स्नानादि के लिए गया तब सेठ ने उसका परिचय दूसरे विद्वान से पूछा तो वह विद्वान् बोला-परिचय क्या? वह पूरा बैल है अब बुला लिया तो ठीक है अपने आप को बहुत बड़ा विद्वान् समझता है। दूसरे विद्वान् जब आये तो पहला विद्वान स्नानादि के लिए गया। तब उनसे उस विद्वान का परिचय पूछा तो वह बोला-कैसा क्या, गधा है पूरा गधा, क्या जानता है वह, कुछ नहीं। अब दोनों फ्रैश होकर भोजन करने बैठे तो थाली में एक के सामने भूसा, एक के सामने घास रख दी। दोनों ने कहा आप विद्वानों का अपमान करते हो। सेठ जी बोले-मैं तो आपके बारे में जानता नहीं हूँ आपसे ही परिचय प्राप्त किया। एक ने कहा गधा है और एक ने कहा बैल है तो मैं गधे के लिये घास और बैल के लिये भूसा ले आया। तो कहने का आशय यह है जब दूसरे

की निंदा की जाती है तो अपना ज्ञान बढ़ता नहीं घटता है इसलिये जीवन में दूसरों की प्रशंसा करना सीखो। जो दूसरों की प्रशंसा, ज्ञान की प्रशंसा सुनकर के ईर्ष्या करते हैं तो उन्हें सौ बार याद करने पर भी याद नहीं होता।

अगली बात है-'निह्नव' यानि छिपाना, गुरु का नाम छिपाना, जो चीज जहाँ से सीखी है वहीं का नाम बताओ। शास्त्र का नाम छिपाने से ज्ञानावरणी कर्म का बंध होता है ज्यों की त्यों कहने से ज्ञान का क्षयोपशम बढ़ता है। अरे छिपाना क्या ? जो तुमने प्राप्त की है सो की है कोई पूछे तुमने ये चीज याद कर ली, तो हाँ कर ली। यदि उससे कह दिया नहीं अभी कहाँ कर पाये और जब कक्षा में पहुँचे तो सरपट सब सुना दिया तो छिपाने से आज तो तुम आगे निकल गये किन्तु कल पीछे रह जाओगे।

अगली बात 'आसादना'-विराधना करना-ज्ञान की विराधना करना कैसे करना। ज्ञान की चार बातें बतायी जा रही हैं आप सुन ही नहीं रहे, चर्चा कर रहे हो, यहाँ-वहाँ देख रहे हो। ज्ञान की अविनय से ज्ञानावरणी कर्म का बंध होता है। अगली बात 'उपघात' ज्ञान को, ज्ञानी को, ज्ञान के उपकरणों को चोट पहुँचाना। व्यक्ति को तुम आघात करोगे तो वह तुम्हें ईंट का जवाब पत्थर से देगा, किन्तु किसी के निर्मल स्वच्छ ज्ञान में दोष लगाने से, बहस करने से, ज्ञान का आघात होता है। उनसे यह न कहो कि आप गलत कह रहे हो उनसे विनय से यह कहो-हमने यह चीज यहाँ पढ़ी है, शायद हमने कहीं गलत तो नहीं पढ़ लिया है। सामने वाला कहेगा अरे तुमने नहीं शायद मैंने ही गलत पढ़ लिया है। कभी किसी के ज्ञान में दोष न लगाओ। ज्ञानी पुरुषों से ईर्ष्या भी ज्ञानावरणी कर्म के बंध का कारण है। ज्ञानार्जन में विघ्न, ज्ञान का अपवाद करना, अनादर करना, धर्मोपदेश सुनने में प्रमाद, शास्त्रों का विक्रय, ज्ञान को बेचने से भी ज्ञानावरणी

कर्म का आश्रव-बंध होता है और दूसरी बात-शास्त्र का क्रय बिना मूल्य मुफ्त में प्राप्त करना। उसका मूल्य नहीं चुकाना, यदि मूल्य चुकाया है तो उसका उपयोग सही करोगे अन्यथा फ्री में तो एक की आवश्यकता है चार ले आओगे, कौन पैसे जाते हैं फ्री में ही तो मिल रहा है, ढेर लगाते जाओ, किन्तु उनका सही सदुपयोग नहीं हो पायेगा, इससे ज्ञान बढ़ेगा नहीं घट जायेगा। दुरुपयोग करने से ज्ञानावरणी कर्म का बंध हो जायेगा, तो शास्त्र का विक्रय करना भी ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी कर्म के बंध का कारण है और शास्त्रों का उचित मूल्य नहीं देना भी ज्ञानावरणी कर्म के आश्रव-बंध का कारण है।

श्रुताभिमान से विद्वेष करना आपको कुछ ज्ञान था शास्त्रों का अध्ययन किया, गद्दी पर बैठकर के मनमाना उपदेश देना प्रारंभ कर दिया उससे भी ज्ञानावरणी कर्म का बंध होता है अगली बात अकाल में अध्ययन करना-जो संध्याकाल है, जिस समय सिद्धान्त, सूत्रग्रंथ आदि नहीं पढ़ सकते, उस समय में अध्ययन करना। आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी महाराज के बारे में सुनने में आता है कि उनका नाम वक्रग्रीवाचार्य भी था। वे स्वाध्याय के प्रति इतने पिपासु रहते थे उन्हें जब भी समय मिले, सिद्धान्त के अध्ययन में लगे रहते थे तो किवदंती यह कहती है कि उनकी गर्दन अकाल में स्वाध्याय करने से थोड़ी वक्र हो गयी थी जिससे उनका नाम वक्रग्रीवाचार्य हुआ। अगली बात आचार्य उपाध्याय, शिक्षा दीक्षा दाता के प्रतिकूल प्रवृत्ति करना, छल कपट करना है, उन गुरुजनों के प्रति निश्छलता का भाव नहीं रखना ईर्ष्या भाव रखना कि उन्हें पढ़ा दिया, हमें नहीं पढ़ाया। इस प्रकार की प्रवृत्ति से चाहे लौकिक गुरु हों या पारमार्थिक यह प्रवृत्ति भी हमारे ज्ञान गुण को ढाँकने वाली है।

अगली बात अश्रद्धा-ज्ञानी पुरुष और ज्ञान के उपकरण के प्रति अश्रद्धा का भाव रखने से ज्ञानावरणी कर्म का आश्रव, बंध होता है। ''अनाभ्यास''-जो कुछ भी आपने याद किया है, उसका बार-बार

अभ्यास न करने से भी ज्ञानावरणी कर्म का आश्रव बंध होता है अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी बनो, निरंतर ज्ञान का चिंतन करते रहो, अनावश्यक संसारी बातों से दूर रहो, इससे ज्ञान का क्षयोपशम बहुत बढ़ता है और यदि एक बार पढ़कर पुस्तक रख दी, देखा ही नहीं वर्षों बीत गये तो भूल ही जायेंगे, इसलिये अभ्यास करते रहना चाहिए।

अगली बात-ज्ञान के केन्द्रों में व्यवधान डालना-ज्ञान के साधन, पुस्तक को ही फाड़ दिया कभी किसी कागज को भी नहीं फाड़ना चाहिये, कहीं कोई शब्द लिखे हैं जमीन पर तो उस पर पैर आदि नहीं रखने चाहियें। क्योंकि अक्षर श्रुत का ही भेद है इसलिये लिखा हुआ पेज कभी नहीं फाड़ना चाहिये। कभी लिखे हुये पर पैर नहीं रखना चाहिये। कभी लिखा हुआ अखबार आदि जिससे माता बहनें कई बार गंदगी तक साफ कर देती हैं ये सब ज्ञानावरणी कर्म का बंध कराने वाला है। कई बार व्यक्ति अखबार बिछाकर बैठ जाते हैं, सो जाते हैं पैर लगता है, हैं तो वे वही अक्षर जो जिनवाणी में लिखें हैं इसलिये इनकी अविनय मत करो, अविनय करने से भी ज्ञानावरणी कर्म का बंध होता है। ज्यों-ज्यों जीवन में ज्ञान की वृद्धि होती है त्यों-त्यों जीवन में अहंकार आना भी संभव है, अल्पज्ञ व्यक्तियों को अहंकार आता है किन्तु जो ज्ञान के मर्म को जानते हैं वे विनम्र हो जाते हैं तो ज्ञान प्राप्त कर विनम्रता नहीं आना और अहं भाव का आ जाना यह भी ज्ञानावरणी कर्म के आश्रव बंध का कारण है। आगे है-ज्ञान, ज्ञानोपकरण, शास्त्रों का अविनय और अपमान करना। पूज्य पुरुषों के प्रति उन्मुख होकर बैठ जाना, पीठ देकर बैठ जाना या उनके आसन पर बैठ जाना कई बार व्यक्ति अज्ञानता से साधु लोगों के पाटे पर जाकर बैठ जाते हैं। तो पूज्य पुरुषों की अविनय करने से भी ज्ञानावरणी कर्म का आश्रव-बंध होता है।

अगली बात-तत्त्वाभ्यास में भी मूर्खता दिखाना, इतनी वाचालता दिखाना कि जो शब्द सही बोला जा सकता है फिर भी जानबूझ कर

उल्टा बोलना। तत्त्वाभ्यास में शठपना भी ज्ञानावरणी कर्म के बंध आश्रव का कारण है।

तो महानुभाव ! आचार्य भगवन् अमृतचंद्र स्वामी ने लिखा कि ये सब आश्रव के हेतु होते हैं इसीलिये इन कारणों से बचना चाहिये। क्षयोपशम बढ़ाने के लिये क्या करें, तुम्हारे पास जो ज्ञान है उस ज्ञान का दान दूसरों को दें, तुम्हारे पास शास्त्र है तो दूसरों को पढ़ने के लिये दें। तुम्हारे पास ज्ञान के उपकरण हैं तो दूसरों के लिये दें, तुम्हारे पास धन है सामर्थ्य है दूसरों के लिये शास्त्र भेंट करें, जिनवाणी का प्रचार-प्रसार करें, शास्त्र छपवाने से ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम बढ़ता है। ज्ञान की, ज्ञानियों की, ज्ञान के उपकरणों की विनय करें, उनकी सेवा करें और जो ज्ञान का अर्जन कर रहे हैं उनको प्रोत्साहन व पुरस्कार दें, जिससे उनकी प्रतिभा का और विकास हो। इस प्रकार के कार्य करने से, स्कूल आदि खुलवाने से, लाइब्रेरी आदि खुलवाने से ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम बढ़ता चला जाता है और व्यक्ति की बुद्धि तेज हो जाती है।

तो महानुभाव ! संक्षेप में आपने ये जाना कि हमें याद क्यों नहीं होता। आपने इस बारे में सुना मुझे उम्मीद है आप बार-बार इस बारे में चिंतन करोगे तो आप ज्ञानावरणी कर्म के आश्रव के कारणों से बचोगे जिनसे ज्ञान की वृद्धि होती है, उस क्षेत्र में आगे बढ़ने का सम्यक् पुरुषार्थ कर सकोगे। आप सभी सम्यग्ज्ञान के क्षेत्र में अग्रणीय अवस्था को प्राप्त करें, सम्यग्ज्ञान के फल को प्राप्त करें, आत्मा के स्वरूप अनंत ज्ञान रूपी वैभव को प्राप्त करें ऐसी मेरी आप सभी के प्रति मंगल भावना है। इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान की जय''

भ्रष्टाचार क्यों ?

जीवन में नव्यता और भव्यता लाने के लिये जीवन में कुछ विशेष विचार करना चाहिये। जो व्यक्ति बिना विचार किये आचरण या व्यवहार करता है वह स्वयं के लिये दु:ख का कारण बन जाता है। जो व्यक्ति बुद्धिपूर्वक सोचकर, समझकर कोई कार्य करता है तो संभावना यही है उसे पश्चाताप नहीं करना पड़ता। आचरण धर्म की आधार शिला है इसलिये द्वादशांग में 'पहलो आचारांग बखानो' आचारांग पहला अंग है। सम्यग्ज्ञान का प्रारंभ आचरण से होता है। जीवन में सम्यक् आचरण नहीं है, सदाचार नहीं है तो यही कहना पड़ेगा उसके अंदर सम्यग्ज्ञान भी नहीं है। महानुभाव ! व्यक्ति का जैसा विचार होता है वैसा ही उसका आचार होता है और जैसा आहार होता है वैसा विचार मन में पैदा होता है। जैसे आचार और विचार होते हैं वैसा ही व्यक्ति का व्यवहार होता है। हमें आज चर्चा करनी है उस आचरण के संबंध में जिसे हम प्राप्त करना नहीं चाहते हैं। जिसे छोड़ना चाहते हैं उसे जानना भी जरूरी है क्योंकि दोषों का परित्याग भी तभी संभव है जब दोषों के बारे में जानकारी हो। विद्वत्वर दौलतराम जी ने लिखा-

बिन जानैं ते दोष गुणन को कैसे तजिये गहिये॥

बिना जाने दोषों का परिहार और गुणों की सम्प्राप्ति असंभव है इसलिये दोषों को जानना जरूरी है। उस आचरण को जानना भी जरूरी है जिससे हमें बचकर के चलना है। रास्ते में यदि काँटे की पहचान न हो तो काँटे से बचकर के कैसे चलेंगे, केवल फूल की पहचान करके काँटों से नहीं बचा जा सकता। पहले बुराई के विषय में जानना जरूरी है। अपने आचरण से, अपने कर्तव्य से, अपने व्यवहार से गिरा हुआ व्यक्ति भ्रष्ट है और भ्रष्ट व्यक्ति अनुत्तीर्ण कहलाता है। जो

अनुत्तीर्ण और भ्रष्ट है वह कभी सम्मानीय और प्रशंसनीय नहीं हो सकता। वह आदर का पात्र नहीं होता। चाहे कक्षा एम.ए. का विद्यार्थी हो अनुत्तीर्ण हो गया तो उसे पुरस्कार नहीं दिया जायेगा और कक्षा एक का विद्यार्थी यदि अच्छे नंबरों से पास हो जाता है तो उसे पुरस्कार दिया जायेगा।

महानुभाव ! भ्रष्ट आचरण का आशय है अपनी कक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाना। जो कुछ पढ़ रहा था, जिस पद पर आसीन था उस स्थान पर यदि निष्ठापूर्वक कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर रहा है जो आचरण उसे वहाँ बैठकर करना चाहिये वह नहीं कर रहा है तो वह व्यक्ति भ्रष्ट ही कहलाता है। आज जानना ये है कि भ्रष्टाचार की जड़ क्या है क्योंकि भ्रष्टाचार के पेड़ को कितनी बार भी काटो, उनके पत्तों को कितना भी तोड़ो, भ्रष्टाचार की कितनी ही शाखाओं को काटते जाओ किन्तु भ्रष्टाचार का पेड़ ऐसे नहीं नष्ट होगा। ये भ्रष्टाचार का पेड़ तो बेशरम के पेड़ से भी बढ़कर महाबेशरम का पेड़ है इसे जितनी बार भी काटो उतना ही बढ़ता चला जाता है, बुन्देल खण्ड में कहावत है।

नकटे की नाक कटी वह बोला एक वीता और बढ़ी

आखिर ये भ्रष्टाचार पैदा कैसे होता है भ्रष्टाचार का बीज क्या है? भ्रष्टाचार की जड़ क्या है? जीवन में कैसे पनपता है ये भ्रष्टाचार? बेशरम के पेड़ तो दिखायी देते हैं उसके कहीं न कहीं बीज भी तो होंगे। कोई न कोई बीज अवश्य होगा बिना कारण के कार्य नहीं होता। व्यक्ति आचरण से क्यों गिरता है, व्यक्ति क्यों चलते-चलते फिसल जाता है, वाहन क्यों पलट जाते हैं? उसका कोई न कोई कारण अवश्य होता है। बिना कारण के संसार में कोई कार्य नहीं होता। यदि बिना कारण के कोई कार्य है तो वह है 'सहज अवस्था'। जीव की या किसी भी द्रव्य की स्वाभाविक अवस्था जिसमें किसी बाह्य कारण की आवश्यकता नहीं।

भ्रष्टाचार केवल भ्रष्ट आचरण से ही नहीं आता पहले व्यक्ति अपने आहार से ही भ्रष्ट हो जाता हो, विचारों से भ्रष्ट हो सकता है। अपने कर्तव्य से भ्रष्ट हो सकता है, भ्रष्टाचार आने का मूल कारण ये भी हो सकता है-जीवन में अनधिकारी चेष्टा। जब-जब भी व्यक्ति जीवन में अनधिकारी चेष्टा करेगा, उसे भ्रष्टाचार का सहारा लेना पड़ेगा। जब-जब भी व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों की चोरी करेगा भ्रष्टाचारी बनकर ही करेगा। कर्त्तव्यों की चोरी और अनधिकारी चेष्टा भ्रष्टाचार को खुला आमंत्रण देने वाले हैं। जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग है सावधान है उम्मीद कम की जायेगी कि भ्रष्टाचारी बन पाये। जो व्यक्ति अपने अधिकारों के बाहर हाथ फैलाने की कोशिश नहीं करता है संभावना है वह भ्रष्ट न हो सकेगा। पगडंडी भले ही छोटी हो किन्तु सावधानी से चलेगा तो गिरने की संभावना कम है और रास्ता बहुत लम्बा चौड़ा भी हो किन्तु प्रमादी होकर के चलेगा तो संभव है वह पलट जायेगा।

महानुभाव ! व्यक्ति पहले गिरता है विचारों में, विचारों में गिरते ही व्यक्ति गिरता है अपने खान-पान में, अपनी चर्या में, वहाँ से गिरते ही फिर आचरण से भ्रष्ट हो जाता है। एक विद्यार्थी बिना पढ़े भी अच्छे नंबरों से पास होना चाह रहा है तो समझ लेना वह भ्रष्टाचारी का पाठ सीख रहा है, वह किसी न किसी को भ्रष्ट करके भ्रष्ट होगा। भ्रष्टाचारी अमरबेल की तरह से है स्वयं की तो कोई जड़ नहीं किन्तु जिस पेड़ पर चढ़ जाये उस पेड़ को सुखा दे। भ्रष्टाचारी जहाँ भी पनपती है वहाँ का सफाया करती है। जब भी व्यक्ति भ्रष्ट होता है तो अकेला नहीं होता। **'खुद डूबे पाहुने, ले डूबे यजमान'**

खुद गिरेगा और दूसरे को भी लेकर गिरेगा। भ्रष्टाचारी जब भी बढ़ती है नि:संदेह ये मानकर चलिये कि एक व्यक्ति अकेला भ्रष्ट नहीं होता, सामने वाले को भ्रष्ट करके भ्रष्ट होता है। महानुभाव ! जब

भी कोई व्यापारी परिश्रम से ज्यादा यदि कुछ पाना चाहता है तो समझ लेना उसका मन भ्रष्ट हो रहा है। कोई मजदूर मजदूरी या परिश्रम किये बिना फल चाहता है समझो वह अपने कर्त्तव्य से भ्रष्ट हो रहा है। कोई पुरुष जो घर का मुखिया है अपने कर्त्तव्यों का पालन किये बिना केवल अधिकार जमाना चाहता है समझो वह भी भ्रष्ट हो रहा है। भ्रष्टाचार के कई शब्द हैं कोई इसे रिश्वत कहता है, कोई घूस कहता है, शास्त्रीय भाषा में इसको उत्कोच कहा जाता है। भ्रष्टाचारी के मायने चाहे कोई चाय-पानी के बहाने से ले ले या किसी और बहाने से ले ले नाम कुछ भी दे दें किन्तु जिस वस्तु पर उसका अधिकार नहीं है उसे लेने का भाव नि:संदेह उसे पथ से भ्रष्ट करने वाला है।

महानुभाव ! पहले भी भ्रष्टाचारी थी, उत्कोच पहले भी दिया जाता था। यदि संसार में अच्छाई अनादिकाल से है तो संसार में बुराई भी अनादिकाल से है। ये बात और है अच्छे व्यक्ति वे कहलाते हैं जहाँ पर अच्छाई ज्यादा हों बुराई कम हों। बुरे व्यक्ति वे कहलाते हैं जहाँ बुराई ज्यादा हों अच्छाई कम हों, अच्छाई और बुराई का साथ ऐसे ही है जैसे रात्रि और दिन का प्रकाश, कभी रात्रि लम्बी होती है और कभी दिन छोटा होता है, कभी दिन लम्बा होता है और रात्रि छोटी होती है। पुण्यपाप का, अच्छाई-बुराई का जोड़ा है इसे हम नष्ट नहीं कर सकते किन्तु इतना अवश्य है अपनी अंदर की बुराई को नष्ट करने का पुरुषार्थ कर सकते हैं। एक बार यदि संकल्प ले लिया जाये तो अपने अंदर की बुराई को दूर कर सकते हैं दुनियाँ का सुधार कर पायें या न कर पायें। यदि हम बुराई से बच गये तो चार लोग देखकर हो सकता है बच जायें और यदि हमने बुराई का त्याग नहीं किया है तो संभव है हम दूसरों से कहते तो रहेंगे किन्तु बुराई से न हम बचेंगे और न सामने वाला बच पायेगा।

यदि कोई पिता सिगरेट पीता है और अपने बेटे से कहे कि बेटा! सिगरेट नहीं पीना चाहिये वह कहेगा आप भी तो पीते हो तो मैं भी

पीऊँगा और यदि पिता जी नहीं पीते हैं तो बहुत कुछ संभव है कि बेटे में वह बुरा आचरण न आ पाये। यदि आया है तो कहीं न कहीं पिता जी ने अनुशासन हीनता बरती है।

महानुभाव ! भ्रष्टाचार की जड़ क्या है? भ्रष्टाचार की जड़ है लोभ या परिग्रह। क्योंकि परिग्रह की जो परिभाषा है आचार्य उमास्वामी जी के शब्दों में ''मूर्च्छा परिग्रह'' यानि आसक्ति परिग्रह है, मूर्च्छा परिग्रह है। लोभ की प्रवृत्ति परिग्रह है तृष्णा की अग्नि से भ्रष्टाचार का प्रकाश होता है। जहाँ-जहाँ लोभ का बीज होगा वहाँ-वहाँ नियम से भ्रष्टाचार की घास जम जायेगी उसे उखाड़ा नहीं जा सकता।

महानुभाव ! आप जानते हैं-हिंसा में केवल एक हिंसा का पाप होता है। असत्य में नियम से दो पाप होते हैं, असत्य भी होता है हिंसा भी होती है। चोरी में तीन पाप होते हैं, चोरी भी होती है असत्य भी होता है हिंसा भी होती है। कुशील में चार पाप होते हैं, कुशील सेवन करना पाप है, वह चोरी से किया जाता है तो चोरी भी है। विषय सेवन करके सत्य नहीं बोलता, विषय सेवन करने में हिंसा भी हो रही है। तो चारों पाप हैं किन्तु परिग्रह में पाँचों पाप हैं, परिग्रह अपने आप में पाप है। पर वस्तु में आसक्ति रखना पाप है, ममत्व बुद्धि पाप है, मोह बुद्धि पाप है, प्रमाद भी पाप है। परिग्रह का संचय किया ही इसलिये जाता है कि भविष्य में मैं इसके माध्यम से खूब भोग भोगूँ। इन्द्रिय विषयों का सेवन करूँ, अनुकूलता मिलती रहे, सुख सुविधायें प्राप्त करता रहूँ इसलिये परिग्रह जोड़ा जाता है।

महानुभाव ! जहाँ तक लोभ का बीज रहता है वहाँ तक नियम से परिग्रह के प्रति आसक्ति रहती है। वह व्यक्ति वस्तु रखे या न रखे किंतु उसके प्रति यदि आसक्ति है तो वह परिग्रही बन गया। भगवान महावीर स्वामी मूर्च्छा भाव को परिग्रह कहते हैं वस्तु आना तो महापरिग्रह हो गया। महानुभाव ! परिग्रह एक ऐसा पिशाच है, जिसके

आगे नवग्रह बोने पड़ जाते हैं। ये परिग्रह एक ऐसा ग्रह है जिसकी ताकत नव ग्रह से भी ज्यादा है। दशवाँ ग्रह परिग्रह को नहीं माना, नीतिकार ने तो दशवाँ ग्रह-**जमाता दशमो ग्रहः** दामाद को दशवाँ ग्रह माना है जो हमेशा कन्या राशि पर स्थित रहता है और ये दस ग्रह उनको ही लगते हैं जिन पर परिग्रह है और जिसके पास परिग्रह नहीं है फक्कड़ बैठा है। घर में रहते हो तो तुम्हें ग्रह परेशान करेगा घर के बाहर कर देगा। जो पहले ही घर छोड़कर बाहर खड़ा है उसका ग्रह क्या करेगा।

महानुभाव ! परिग्रह, आसक्ति का भाव, तृष्णा की अग्नि व्यक्ति के जीवन में क्यों प्रज्वलित होती है? लोभ कब आता है? लोभ का आशय है जिसकी तुम्हारे अंदर पात्रता नहीं है उस चीज को प्राप्त करने की लालसा। मितव्ययता अलग है, लोभ अलग है। लोभ में व्यक्ति जहाँ पर खर्च करना चाहिये वहाँ पर भी खर्च करता नहीं है और मितव्ययता में सीमित खर्च करता है। लोभ का आशय है जिसकी तुम्हारे अंदर पात्रता नहीं है, तुम्हारा इतना पुण्य नहीं है, भाग्य नहीं है उस वस्तु को प्राप्त करने की चाहना। यह लोभ का कार्य है वह परिग्रह कब परिग्रह बनता है जब जिस वस्तु में तुम्हारी आसक्ति होती है, तुम्हारी मूर्च्छा होती है। तीर्थंकर भगवान समवशरण में रहते हैं कितना वैभव है कोई मूर्च्छा नहीं, कोई आसक्ति नहीं, उनका वह वैभव परिग्रह नहीं है। कोई चक्रवर्ती भरतादि छः खण्ड के राज्य में भी विरक्त रह रहे हैं तो वह उसका परिग्रह नहीं है।

जब भी व्यक्ति अवैध रूप से कुछ प्राप्त करना चाहता है तब उसे भ्रष्ट होना ही पड़ेगा। लोभ कौन-कौन सा हो सकता है जीवन में पहला लोभ होता है धन का लोभ वह चार महीने में सेठ बनना चाहता है मैं जल्दी से करोड़पति बन जाऊँ। चाहे महीने में कमाये 4 हजार रु. पर मन कहता है 40 हजार 4 करोड़ आ जायें। तो जिसका

मन बहुत लम्बी छलाँगें भरता है वह जल्दी गिर जाता है। जो पक्षी आकाश में शक्ति से ज्यादा उड़ेगा वह नीचे जल्दी टपक जायेगा, जो गाड़ी स्पीड से ज्यादा चलेगी उसका एक्सीडेंट हो जायेगा। जो व्यक्ति जल्दी ही करोड़पति या अरबपति बनना चाहता है अथवा शक्ति, सामर्थ्य, पात्रता और भाग्य से ज्यादा प्राप्त करना चाहता है तो उसका मन उसे भ्रष्ट कर देता है।

दूसरा मन में लोभ आता है वह है-विषयों का लोभ, पंचेन्द्रिय से संबंधित जो विषय सामग्री है वह सामग्री जो तुम्हें अपने भाग्य से प्राप्त हुयी उसमें संतोष नहीं है और आगे की अभीप्सा है। नि:संदेह तुम्हारा मन तुम्हें लोभी बनायेगा भ्रष्ट कर देगा और यदि तुमने अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण रख लिया, जो तुम्हारे भाग्य में है उस में संतुष्ट हो तो नि:संदेह तुम भ्रष्ट न हो सकोगे।

अगला लोभ है भौतिक सुख-सुविधा का लोभ, विलासिता का लोभ। जब व्यक्ति मेहनत कर कमा कर पेट भर खा सकता है तो भ्रष्ट नहीं होगा। सामने वाले के पास चीजों को देखकर मन में भाव आता है ये चीज मेरे पास भी होना चाहिये तो भौतिक सुविधाओं को भोगने के लिये वह व्यक्ति भ्रष्ट हो जाता है।

अगली बात है 'आरोग्य का लोभ' नियम ले लिया मैं जीवन में अभक्ष्य का सेवन नहीं करूँगा। किसी डॉक्टर वैद्य ने कह दिया यदि तुम ये नहीं खाओगे तो मर जाओगे, वह व्यक्ति अपने आचरण से भ्रष्ट हो गया। तो आरोग्य का लोभ भी उस व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य से भ्रष्ट कर सकता है।

अगला लोभ है-'कषाय पोषण का लोभ' मान कषाय की पुष्टि के लिये व्यक्ति भ्रष्ट होकर धन कमायेगा, अवैध कार्य करेगा, मान की पुष्टि के लिये, मायाचारी को छिपाने के लिये व्यक्ति भ्रष्ट होता है।

अगला लोभ होता है 'पद और सत्ता का लोभ' व्यक्ति सोचता है मुझे पद प्राप्त हो जाए। सत्ता-पद को प्राप्त करने के लिये, सत्ता में रहने के लिये राजा-महाराजा बादशाह आदि ऐसे भी हुये जहाँ बाप ने बेटे को, बेटे ने बाप को मार दिया कि सत्ता मेरे पास रहे। ये सत्ता अच्छे-अच्छे व्यक्तियों को अंधा कर देती है तो महानुभाव! भ्रष्टाचार की जड़ है लोभ, परिग्रह, तृष्णा की अग्नि, अपने भाग्य से ज्यादा प्राप्त करने का दु:साहस। भ्रष्टाचार की जड़ है बिना पुरुषार्थ के प्राप्त करने की अभीप्सा। इससे व्यक्ति भ्रष्ट हो जाता है।

महानुभाव ! भ्रष्टाचार की जड़ नीचे नहीं होती, यह पेड़ नीचे से नहीं ऊपर से पैदा होता है। 'यथा राजा तथा प्रजा'-यदि राजा भ्रष्ट हो तो यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि प्रजा ईमानदार बनी रहेगी। यदि घर का मुखिया भ्रष्ट है तो घर के लोगों से उम्मीद नहीं की जा सकती कि घर के लोग शरीफ रहेंगे। महानुभाव ! ये परिग्रह सबसे बड़ा पिशाच है। जो व्यक्ति तत्त्वज्ञानी होता है वह इस पिशाच की पकड़ में नहीं आता।

एक राजा युद्ध से लौट रहा था, जंगल में तम्बू लगे हुये थे संयोग वशात् वहाँ भोजन तैयार किया। भोजन में नमक की कमी पड़ी, निकट ग्राम में एक वजीर को भेजा कहा नमक ले आओ। वह नमक लेने गया और नमक लेकर आ गया। राजा ने पूछा नमक कितने पैसे का लाये, वह बोला कितने पैसे का-आपके लिये नमक लाऊँ और पैसे देकर के आऊँ अरे ! दुकानदार बिना पैसे के नमक दे रहे थे। राजा ने कहा पैसे बता-वह बोला महाराज मुझसे किसी ने पैसे ही नहीं लिये। मैंने कहा राजा के लिये नमक चाहिये उन्होंने कहा घी भी ले जाओ, शक्कर भी ले जाओ। राजा ने कहा ये नमक हम नहीं खायेंगे, पहले नमक के पैसे देकर आओ तब हम स्वीकार करेंगे, यदि राजा कण भर नमक की चोरी करेगा तो प्रजा मनभर धन की, कनक की चोरी करेगी।

इस प्रकार का सिद्धान्त धारण करने वाले शासक अपने देश में रहें तो भ्रष्टाचार का बहुत कुछ उन्मूलन किया जा सकता है। भ्रष्टाचारी ऊपर से बढ़ती है किसी संस्था का शासक यदि भ्रष्ट होता है तो नीचे वाले व्यक्तियों को भ्रष्ट होने का मौका मिलता है। यदि ऊपर वाला शासक ईमानदार रहेगा तो अपने अधीनस्थ को ईमानदार रख सकता है। वह यह अपेक्षा करे कि मैं तो अपनी मनमानी करता रहूँ और मेरे नीचे वाले ईमानदारी से चलें तो यह असंभव है। यदि इंजन यह सोचे कि मैं रेल की पटरी से नीचे चलूँगा किन्तु डिब्बे रेल की पटरी पर ही चलें तो क्या कभी ऐसा हो सकता है। देश में भ्रष्टाचारी जब-जब भी बढ़ी है तब भ्रष्ट शासकों के माध्यम से ही बढ़ी है और देश में जब-जब भी भ्रष्टाचारी घटी है ईमानदार, सत्यवादी, लोकप्रिय और प्रजा को पुत्रवत् मानने वाले शासकों के माध्यम से ही घटी है तथा देश में धर्म की प्रभावना हुयी है।

एक बात और है जिस व्यक्ति को कर्म सिद्धान्त पर विश्वास नहीं है, पुण्य-पाप पर विश्वास नहीं है वह व्यक्ति भ्रष्टाचार का सहारा लेता है। जिनको पुण्य और पाप पर विश्वास है वह व्यक्ति कहेगा मेरे भाग्य में जो होगा वह मुझे प्राप्त हो जायेगा और जो मेरे भाग्य में नहीं है वह यदि मुझे प्राप्त भी हो जायेगा तो मैं भोग नहीं पाऊँगा। जब सम्पत्ति भाग्य से आती है तो छप्पर फाड़ के आती है और जब जाती है तो चमड़ी उधेड़कर ले जाती है चमड़ी अकेली नहीं प्राणों को लेकर के जाती है। महानुभाव ! भगवान महावीर स्वामी का यह सिद्धान्त कि-'जीयो और जीने दो' का आशय यह है न्यायनीति पूर्वक तुम जीओ, दूसरे को भी चैन से जीने दो। जो व्यक्ति स्वयं न्याय नीति से नहीं जीता वह दूसरे को भी चैन से नहीं जीने देता, 'जीयो और जीने दो'-स्वयं पहले स्वस्थ, स्वच्छ जीओ जैसे पहले सम्यक् जीवन जीने के लिये स्वस्थता आवश्यक है ऐसे ही सम्यक् जीवन

जीने के लिये स्वच्छता की आवश्यकता है। स्वच्छता से आशय है कि जीवन में कभी कोई विकार न हो। भ्रष्टाचार की गंदगी न हो।

तो महानुभाव ! परिग्रह एक पिशाच है, एक भूत है जिसके पीछे लग जाये उसकी दम लेकर छोड़ता है। इसलिये परिग्रह तुम्हारे पीछे लगे, वह भूत तुम्हारे ऊपर चढ़े उससे पहले ही तुम परिग्रह के भूत को छोड़ देना परिग्रह के भूत से बचने का एक ही उपाय है वह है ''तत्त्वज्ञान रूपी महामंत्र''। जिसके पास कर्म सिद्धान्त का तत्त्व ज्ञान है ऐसे कर्म सिद्धान्त के ज्ञाता पुरुष को परिग्रह का पिशाच नहीं सता सकता। मूल के बिना फूल नहीं होते। जो फूल होते हैं वे ज्यादा दिन तक टिकते नहीं हैं। मूल ही परिग्रह है इससे बचें, धन में आसक्त न हों, अपने कर्त्तव्य का पालन करते चले जायें तो नि:संदेह मन में विश्वास रखें तुम्हारे पुण्य को और तुम्हारे पुण्य के फल को दुनिया में कोई छीन नहीं सकता और इस बात पर भी विश्वास रखें कि यदि तुमने किसी के लिये पाप किया है तो उसके फल को तुम्हें ही भोगना पड़ेगा तुम्हारे पाप को और पाप के फल को भी कोई छीन नहीं सकता यहाँ तक कि जन्म देने वाला बाप भी पाप को नहीं छीन सकता। वह भी तुम्हारे पाप-पुण्य में सहकारी नहीं बन सकता वह भी केवल तुम्हें खिला पिला सकता है, वो भी तुम्हारे पुण्य के उदय से, यदि पुण्य का उदय नहीं है तो तुम्हें कहीं शरण नहीं मिल सकती।

परिग्रह में सभी पापों का वास है इसलिये परिग्रह को पाप का बाप कहा, यह भ्रष्टाचार की जननी है इसलिये जीवन में न्यायप्रिय, सत्यवादी, ईमानदार बनना चाहते हो तो सबसे बड़ी बात ये ध्यान में रखो कि हे भगवान! मेरे पुरुषार्थ से भाग्य से जो मिलेगा उसी में संतोष धारण करूँगा। जो कम परिश्रम कर ज्यादा पारिश्रमिक चाहता है उसे परिश्रम से ज्यादा पारिश्रमिक मिल नहीं पाता। जो आज ज्यादा परिश्रम कर रहा है उसे कम पारिश्रमिक भी मिल रहा हो तब भी चिंता नहीं करना है आज का कल मिलेगा।

ये ध्यान रखना यह शाश्वत सिद्धान्त है कि कोई किसी का खाकर जा नहीं सकता चुकाना ही पड़ता है चाहे इस भव में चुकाओ चाहे अगले भव में चुकाओ। लोग तो कहते हैं कि अभी नहीं चुकाया तो अगले भव में गधा बनेगा, घोड़ा बनेगा, ऊँट बनेगा, हाथी, बैल, भैंसा बनेगा चुकाना पड़ेगा और ये नहीं बन पाया तो एकेन्द्रिय वृक्ष बनेगा मेरे खेत में खड़े होकर गर्मी सर्दी बरसात सहन कर चुकायेगा। कैसे भी करके चुकायेगा। बिना चुकाये कोई मोक्ष जा नहीं सकता। अपने भाग्य का व्यक्ति लेता है दूसरे के भाग्य का नहीं लेता।

धौलपुर से बाड़ी बसेड़ी के लिये एक छोटी रेलवे लाइन है शायद अभी भी होनी चाहिये, पहले थी। छोटी रेलगाड़ी बहुत कम स्पीड बिल्कुल साइकिल की स्पीड में चलती थी लोग तो कहते थे इतनी कम स्पीड है कि इसमें से उतर कर सामने से चना के बूट खींच लायें पुनः इस पर चढ़ जायें। ऐसी कम स्पीड से चलने वाली गाड़ी थी और स्टेशन ऐसे थे जहाँ कोई व्यवस्था नहीं थी। बड़े-बड़े झाड़ झंकड़ थे। एक वृद्ध पुरुष उस गाड़ी में सवार हुये, उनके साथ उनका एक पोता भी था, उस गाड़ी में और भी महानुभाव बैठे थे, एक ठाकुर भी आया, मूँछों पर ताव देते हुये, उसके पास एक तेगा था तेगा अर्थात् एक हथियार तलवार फरसा जैसा कुछ होता है। गाड़ी रुकी उस झाड़झंकड़ में से एक सर्प उस गाड़ी के उसी डिब्बे में चढ़ आया। सेठजी अपने पोते के साथ बैठे थे, वह सर्प उस पोते के पैर पर बार-बार अपना फण मार रहा था। लोग घबरा गये, सेठ भी घबरा गया कि कहीं सर्प मेरे पोते को डस न ले, वे रोने चिल्लाने लगे। वह जो ठाकुर आया था उसने जब देखा सर्प आ गया तब उसने न आव देखा न ताव उस तेगा से उस सर्प के दो टुकड़े कर दिये।

उसके बाद में उसी स्टेशन पर उस ठाकुर को उतरना था वह उतरकर खेत की ओर जा रहा था, वहाँ किसान खेत जोत रहे थे

लगभग कुँवार के महीने की बात है। लोगों ने देखा कि ठाकुर साहब आ रहे हैं और वे एक जगह झाड़ियों के पास लघुशंका करने के लिये बैठ गये, जैसे ही उठे तो खड़े होते ही गिर पड़े। जो आस-पास खेत जोत रहे थे वे किसान दौड़कर के आ गये, देखा नगर के ठाकुर साहब कैसे गिर पड़े, अरे शरीर तो बिल्कुल नीला पड़ गया। पहले जब किसी को सर्प डस लेता था तो जागर रखी जाती थी और वह जहर को खींच लेती थी क्या होता है इस रहस्य को आज तक हम भी नहीं जान पाये। तो ऐसा रखा गया, उस व्यक्ति पर वो जीव आ गया सर्प का जीव या व्यंतर बन गया जैसे भी हुआ।

उससे पूछा-तुमने इसको क्यों काटा तो वह व्यक्ति बोलने लगा, मैंने इसका क्या बिगाड़ा जो इसने मेरे दो टुकड़े कर दिये। लोगों ने कहा-कुछ न कुछ तो किया होगा। ट्रेन के उसके कुछ और साथी आये जिनके साथ वो बैठा था। बताया कि सर्प बालक को डसने वाला था इसलिये इसने उसको मार दिया। वह बोला मैं बालक को डसने नहीं आया था, बालक मेरे पूर्व भव का मालिक था उससे मैंने 300 रु. उधार लिये थे, मैं चुका नहीं पाया था। मैं डस नहीं रहा था वह तीन सौ रु. का कर्ज मेरे ऊपर चढ़ रहा था मैं अपने स्वामी को मना रहा था, चरणों में फण पटक रहा था इसने मेरे दो टुकड़े क्यों किये? उससे कहा अपना जहर खींच ले बोला ऐसे नहीं खींचूँगा, आप उसके अभी 300 रु. मयब्याज के चुका कर आ जाओ तो मैं इसका जहर खींच लूँगा। लोगों ने वचन दिया हम चुका देंगें तो ऐसी घटना घटी।

महानुभाव ! राजाखेड़ा की सत्य घटना है एक व्यक्ति का पैसा किसी के पास था वह देने से मना कर रहा था। 10-20 साल बाद अपने आप आ गया और पैर पकड़ लिये सेठ जी मेरे पास इतने पैसे ही हैं, ले लो और कागज फाड़ दो, कागज फाड़ दो। आखिर बात क्या है तू पहले मना कर रहा था पैसा नहीं दूँगा और अब ऐसे कह रहा है कि कागज फाड़ दो आखिर बात क्या है? वह बोला बात यह

है कि मैंने स्वयं अपनी आँखों से यह दृश्य देखा है कि एक व्यक्ति जो कर्ज लेकर मरा पुनः जन्म लेकर उसे कर्ज चुकाना पड़ा। मुझे विश्वास हो गया इस बात पर।

तो कहने का आशय यह है कि व्यक्ति जब कभी भी अपने भाग्य से ज्यादा प्राप्त करके भोग ले तो उसे चुकाना पड़ता है। और आज नहीं मिला तो आगे मिलेगा ऐसा हिसाब है जैसे बैंक से लोन ले लिया तो चुकाना पड़ेगा और जमा कर दिया आज नहीं निकाला तो आगे मिल जायेगा। जैसे व्यक्ति आज पुण्य कर रहा है उस पुण्य के फल को आज न प्राप्त करे तो पुनः आगे भोगेगा और आज ज्यादा भोग लेता है तो आगे मिल नहीं पायेगा। कई बार व्यक्ति मजदूरी करने से पहले एडवांस ले लेता है, कई बार किसान खेती करने से पूर्व खेती के लिये अपने मालिक से उधारी लाते हैं, वे फसल आने से पहले ही फसल को खा जाते हैं और कोई ऐसे हैं जो फसल आने के बाद खाते हैं तो जीवन में इस बात पर दृढ़ विश्वास रखें कि तुम्हारे भाग्य का एक पैसा भी कोई ले नहीं सकता।

कोई कितना भी प्रयास करे, सभी व्यक्ति मिल भी जायें और तुम्हारे पुण्य के फल को छीन कर ले जायें तो पूरी दुनिया मिलकर भी तुम्हारे पुण्यफल को नहीं छीन सकती। ये भी ध्यान रखना दुनिया में ऐसा कोई भी भगवान नहीं है कि पाप तुम करो और वह तुम्हें माफ कर दे। उस पाप का फल भी तुम्हें भोगना पड़ेगा। उस भगवान के दर पर चाहे माथा रगड़ो या पूजा करो या चावल चढ़ाओ पाप किया है तो फल भी भोगना पड़ेगा। तो महानुभाव ! इस सिद्धान्त को जीवन में समझते हुये भ्रष्ट आचरण से बचने का प्रयास करो। भ्रष्ट आचरण से कभी किसी का कल्याण नहीं हुआ, प्रशासन यदि चुस्त हो जाये तो मैं समझता हूँ भ्रष्टाचारी बहुत कुछ कम हो जाये। प्रायःकर मैं बड़ों को ही दोष देता हूँ जब भी छोटों की कोई गलती दिखायी दे

रही है छोटे में कोई कमी आ रही है तो बड़ों का दोष है उन्होंने छोटों को सुधारा क्यों नहीं। यदि जनता बेईमान बन रही है तो मैं समझता हूँ जनता पर शासन करने वाला शासक कहीं न कहीं किसी हद में बेईमान है। जब भी दो वाहनों में एक्सीडेंट होता है (साइकिल ट्रक में टक्कर हो जाये) आप भी जानते हैं गलती किसकी मानी जायेगी ट्रक वाले की, बड़े वाहन की गलती मानी जाती है छोटे वाहन की नहीं। छोटा सदैव क्षम्य होता है।

महानुभाव ! जो कोई भी अपने घर के मुखिया हैं, समाज में मुखिया हैं, अपने जिले/प्रान्त के मुखिया हैं या देश में मुखिया हैं, प्रभु परमात्मा के चरणों में बैठकर सुबह-शाम यही भावना भायें कि प्रभु! हमारे जीवन में सत्यता, ईमानदारी कर्तव्यनिष्ठता की शक्ति दो, यदि ये शक्ति मेरे पास आ गयीं तो मेरा आचरण भी महापुरुषों जैसा हो जायेगा और यदि मैं उस प्रकार की शक्ति से रहित रहता हूँ तो मुझे अवैध रूप से भ्रष्ट बनना पड़ेगा क्योंकि सत्ता की, धन की भूख बहुत बड़ी होती है। व्यक्ति की तन की भूख शांत हो जाती है किन्तु-

तन की भूख कितेक है, तीन पाव या सेर
मन की भूख इतेक है निगलन चाहे सुमेर।

व्यक्ति तन की भूख को तो शांत कर लेता है किंतु मन की भूख को शांत नहीं कर पाता। मन की भूख शांत होती है तत्त्वज्ञान से, चिंतन करने से, साधुओं की सेवा करने से, प्रभु परमात्मा के चरणों में बैठने से, निष्ठा पूर्वक कर्त्तव्यों का पालन करने से।

मेरा आप सभी सुधी श्रावक-श्राविकाओं को यही संकेत है कि इस बात पर विश्वास रखो तुम्हारा पुण्य तुम्हारा पाप तुम्हारे साथ है कोई दूसरा ले नहीं सकता। दूसरे का पुण्य पाप फल तुम ले नहीं सकते। इसलिये अपने कर्त्तव्यों का ईमानदारी से पालन करो यही

आत्म कल्याण का मार्ग है आप सभी लोग सत्य ईमानदारी न्याय प्रियता को जीवन में स्थान दोगे ऐसी मुझे उम्मीद है इसी सद्भावना व उम्मीद के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान की जय''

ज्ञान के शत्रु

जीवन को जीवंत रखने के लिये भोजन, वस्त्र और भवन इन तीनों की आवश्यकता होती है ऐसे ही आत्मा को सुखी शांत बनाने के लिये दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनों की परम आवश्यकता होती है। ज्ञान, श्रद्धा और चारित्र के बीच में रहता है ज्यों-ज्यों जीवन में सम्यग्ज्ञान की वृद्धि होती चली जाती है त्यों-त्यों श्रद्धा में दृढ़ता आती चली जाती है और सम्यग्ज्ञान की वृद्धि होते-होते व्यक्ति का आचरण सुधरने लगता है। कोई कितना भी समझाये किन्तु कोई स्वयं न समझना चाहे तो उसे कोई समझा नहीं सकता अपने चारित्र, संयम में दोष लगाता रहता है। जब स्वयं ही उसे अंदर से प्रेरणा मिलती है स्वाध्याय करता है, सुनता है तत्त्वचिंतन करता है, सम्यग्ज्ञान की ज्योति ज्यों-ज्यों वृद्धिंगत होती जाती है त्यों-त्यों अज्ञान, असंयम और मिथ्यात्व का अंधकार मिटता चला जाता है।

महानुभाव ! ज्ञान की आवश्यकता है इसलिये ज्ञान का अर्जन करना चाहिये। आप लोग जीवन यापन करने के लिये अर्थोपार्जन करते हैं ऐसे ही ज्ञानोपार्जन करना चाहिये, ज्ञानोपासना करनी चाहिये। अर्थ उपार्जन करने के लिये व्यक्ति अपने देश को, नगर को, ग्राम को छोड़कर विदेश जाता है दूसरे नगर में जाता है, नाना प्रकार के व्यापार करता है। यदि किसी एक व्यापार में घाटा लग जाता है तो उसे बदल कर दूसरा तीसरा करता है और उसका लक्ष्य यही होता है कि मैं ऐन-केन प्रकारेण धन संग्रह करूँ और धन के माध्यम से अपने शरीर को अधिक से अधिक सुखी बना सकूँ। ऐसे ही आत्मा को सुखी बनाने के लिये ज्ञान की आवश्यकता है। बिना ज्ञान के आत्मा पर पदार्थों से अपना संबंध तोड़ नहीं सकती, बिना ज्ञान के आत्मा, आत्मा के साथ संबंध जोड़ नहीं सकती, बिना ज्ञान के आत्मा अनंत सुख को पा नहीं सकती, बिना ज्ञान के आत्मा मोक्ष जा नहीं सकती।

उस सम्यग्ज्ञान की महती आवश्यकता है किन्तु स्वाध्याय करते-करते भी छः प्रकार के प्राणी वे हैं जो सम्यग्ज्ञान को प्राप्त नहीं कर पाते। पहली बात तो ये इन छह का स्वाध्याय में ही मन नहीं लगता कहीं शास्त्र खोलकर स्वाध्याय करने बैठ जायें तो इनके जीवन में ज्ञान की वृद्धि नहीं हो पाती। आचार्य महोदय कह रहे हैं-

आलस्यो मन्दबुद्धिश्च सुखिनो व्याधि पीड़ितः।
निद्रालु काम क्वश्चेति षडैते शास्त्र वर्जितः॥

ये छः शास्त्र में वर्जित हैं। शास्त्र में सम्यग्ज्ञान में इनका प्रवेश नहीं है आप जानते हैं कि शास्त्र किसे कहते हैं ? शास्त्र शब्द का व्युत्पत्ति अर्थ होता है शास्त्र=शा=अनुशासन आत्मा पर अनुशासन करने की शिक्षा और त्र-रक्षा, आत्मा की रक्षा करने की शिक्षा और आत्मा पर अनुशासन करने की शिक्षा जिससे प्राप्त होती है वह शास्त्र कहलाता है अथवा जो प्राणीमात्र को हितकर लगे वह शास्त्र है जो प्राणीमात्र का कल्याण करने में समर्थ है वह शास्त्र है। शास्त्र इन छः को अलग कर देता है कहता है तुम्हारा यहाँ कोई काम नहीं है, इन छः बातों को छोड़कर आओ तब तो अपनी आत्मा की रक्षा करने में समर्थ हो पाओगे और अपनी आत्मा की ढाल की तरह रक्षा कर पाओगे। तो पहली बात-'आलस्य'।

आलसी व्यक्ति शास्त्र का अभ्यास नहीं कर सकता। आलस हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह इन पाँचों पापों का आश्रव कराने वाला है। आलस प्रमाद है 'प्रमत्त योगात्' प्रमाद योग से कोई भी क्रिया करते हैं तो आश्रव होगा, निष्प्रमाद होकर के क्रिया करोगे तो आश्रव नहीं होगा। प्रमाद के साथ स्वाध्याय भी करोगे तो पहले तो पढ़ने में मन नहीं लगेगा यदि लग भी गया तो मस्तिष्क में कुछ ठहर नहीं पायेगा जैसे छलनी में पानी नहीं ठहरता है या छिद्र युक्त अंजली में जल नहीं ठहरता है ऐसे ही आलसी व्यक्ति का स्वाध्याय में पहले तो मन ही

नहीं लगता। खेलने में मन लगेगा, बातें करने में लगेगा, किसी और में मन लगेगा किन्तु पढ़ने में मन नहीं लगेगा। पढ़ने बैठेगा तो शास्त्र की अविनय करेगा और शास्त्र की अविनय करने से ज्ञान की वृद्धि नहीं होती, ज्ञान का ह्रास होता है।

जो प्रज्ञपुरुष होता है, मेधावी होता है, प्रखर बुद्धि का धारक होता है वह जब कोई शास्त्र स्वाध्याय करता है चार बात पढ़ता है, चार बात और नयी उसके दिमाग में आ जाती हैं किन्तु जो मन्दबुद्धि होता है उसे दस बार, बीस बार, पचास बार पढ़ाओ या स्वयं भी पढ़े तो भी दिमाग में बात चढ़ नहीं पाती यदि चढ़ भी जाये तो ठहर नहीं पाती। जैसे चिकने रास्ते पर चलने से पैर फिसलने का डर रहता है ऐसे ही मन्दबुद्धि का भी फिसलने का डर रहता है। वह कुछ भी याद करता है तो कथन कहीं का कहीं जोड़ देता है आधी बात यहाँ की, आधी बात वहाँ की सही बात याद नहीं रह पाती गलत बात जल्दी याद हो जाती है। तो मंद बुद्धि वाला ज्ञानी कैसे बनेगा? क्या जीवन में कभी ज्ञानी नहीं बन सकेगा? बन सकेगा, यदि अंदर से उत्साह पूर्वक प्रमाद आलस को छोड़कर ज्ञान की ओर बढ़ सके। एक अक्षर याद होने पर भी मन में खुशी हो, प्रसन्नता हो, आह्लाद हो दूसरी को याद करते हुये पहली का रिवीजन करते रहो, फिर तीसरी याद करो। एक-एक अक्षर से व्यक्ति विद्वान् बन सकता है।

एक-एक करके पेड़ लगाओ, तो तुम बाग सजा दोगे।
एक-एक करके ईंटें जोहो तो तुम महल बना दोगे॥
एक-एक करके पैसा जोड़ो तो तुम बन जाओ धनवान्।
एक-एक करके अक्षर सीखो तो तुम बन जाओ विद्वान्॥

एक-एक पेड़ लगाने से बाग बन जाता है, एक-एक ईंट जोड़ने से महल बन जाता है, एक-एक पैसा जोड़ने से व्यक्ति धनवान् हो जाता है और एक-एक अक्षर सीखने से व्यक्ति विद्वान् और गुणवान्

बन जाता है। देखो आज का बनिया कल ही सेठ तो बनता नहीं है। वह तो कोई भाग्य का धनी ही आ जाये तो बात एक अलग है। अन्यथा व्यक्ति धीमे-धीमे ही बढ़ता है।

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आये फल होय॥

आज ही यदि खेत में बीज बो दिया और सोचें शाम को ही फल तोड़ कर खा लेंगे यह तो असंभव है। शनैः-शनैः करके सब कुछ संभव हो सकता है, व्यक्ति लगनशील हो, हिम्मत न हारे।

कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।
लहरों से डरकर के नौका पार नहीं होती॥
नन्हीं चींटी जब दाना लेकर चढ़ती है।
चढ़ती दीवारों पर सौ बार फिसलती है॥
मन का विश्वास रग रग में साहस भरता है।
गिरकर चढ़ना, चढ़कर गिरना नहीं कभी अखरता है॥
आखिर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती।
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती॥

कोशिश करते रहो, व्यक्ति धन कमाने जाता है एक बार असफल हुआ, दो बार हुआ तो क्या व्यापार करना छोड़ देता है? नहीं, फिर-फिर कोशिश करता है और एक दिन ऐसा आता है कि वह धनी बन जाता है ऐसे ही ज्ञान के क्षेत्र में कोई कितना ही मंद बुद्धि क्यों न हो, प्रयास और पुरुषार्थ करने पर सफलता क्यों नहीं मिलेगी। अरे संसार में ऐसे भी व्यक्ति हैं जो एक दिन में एक पंक्ति भी याद नहीं कर पाते और ऐसे भी हैं जो चाहे तो एक दिन में 60-70 गाथायें याद कर लें। दौलतराम जी के बारे में आता है वे सासनी मे रहते थे, उनके यहाँ कपड़े की रंगाई का कार्य होता था, उस काम को

करते-करते कर्मकाण्ड, जीवकाण्ड की एक-एक दिन में साठ-साठ गाथा याद कर लेते थे, वे भी इंसान थे। रामचन्द्र के बारे में आता है वे शतावधारी थे, अर्थात एक बार में उनसे कोई सौ प्रश्न पूछे वे सभी का उत्तर क्रम-क्रम से देते थे। अकलंक देव के बारे में आता है एक पाठी थे, एक बार याद कर लिया बस हो गया। निकलंक देव द्विपाठी थे, तो क्षयोपशम बुद्धि का बढ़ सकता है, बुद्धि ऋद्धि के अठारह मंत्र हैं उन मंत्रों की या किसी एक मंत्र की भी जाप लगाओ तो बुद्धि का विकास होता है और उन ऋद्धिधारी मुनियों का ध्यान करो जिन पर ये ऋद्धियाँ हैं चरणों में नमन करके जाप लगाओ हे प्रभो ! ज्ञान ही आत्मा का स्वभाव है मैं ज्ञान को प्राप्त क्यों नहीं कर पा रहा मैंने पूर्व में ऐसा कौन सा कर्म किया जो मेरा क्षयोपशम इतना गिरता जा रहा है जो कि मुझे याद नहीं होता।

अगली बात कही-

जो सुखाभिलाषी हो, ऐसा विद्यार्थी विद्या को प्राप्त नहीं कर पाता।

सुखार्थिनो कुतोविद्या, विद्यार्थिनो कुतो सुखं।
सुखार्थिनो त्यजेत् विद्या, विद्यार्थिनो त्यजेत् सुखं॥

स्ट्रीट लाइट से पढ़कर के व्यक्ति इतने विद्वान् बन गये कि विश्व ने उनका लोहा माना और राजमहल में रहने वाले इतना नहीं पढ़ पाये। जो जितनी प्रतिकूलता में रहा है, पढ़ा है, समझा है, गुना है उसने उस विद्या के फल को प्राप्त किया है। आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने लिखा है-

सुहे भाविदं णाणं, दुहे जादे विणस्सदि॥
तम्हा जहा बलं जोइ, अप्पा दुक्खे भावहे॥

सुख में भावित किया गया ज्ञान, दुख आने पर नष्ट हो जाता है इसलिये योगी को निरंतर दु:खों की भावना भानी चाहिये। दु:खों में

जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है वह कभी नष्ट नहीं होता, जो सुख में प्राप्त किया जाता है वह दु:ख आने पर नष्ट हो जाता है। जिस व्यक्ति ने प्रतिकूलता में ज्ञान को प्राप्त किया है वह व्यक्ति बहुत ऊँचे पद पर पहुँच गया और जिसके पिता ने अपने बेटे के लिये सब अनुकूलतायें जुटा दी हों तो भी वह बालक पढ़ नहीं पाया। प्रतिकूलता में ही तो अनुकूलता बनती है, काँटों के बीच में फूल खिलते हैं केवल फूल को तोड़ कर सेज पर रख दिया जाये तो खिलेगा नहीं मुरझा जायेगा। चिंता, दु:ख, आपत्ति, विपत्ति जितनी प्रतिकूलतायें हैं सभी व्यक्ति के जीवन का निखार करने के लिये आती हैं। कवि ने लिखा है-

चिंता न करो तुम दु:खों की ये यूँ ही कटते जाते हैं।
फूल सदा काँटों में खिलते, सेजों पर मुरझाते हैं॥

दु:खों की चिंता क्यों करते हो, ये दु:ख तो अपने आप कटते चले जाते हैं। फूलों को देखो काँटों के बीच भी मुस्कुराते रहते हैं और पानी में डुबो कर रख दो तो सड़ जायेंगे। फूलों को छाया में रखो तो मुरझा जायेंगे। फूलों को थोड़ी धूप लगने दो, जितनी धूप तेज होगी उतना ही फूल ज्यादा खिलेगा, मुस्कुरायेगा और यदि आकाश में बादल छाये हैं, घटा छायी है तो फूल सड़ जायेगा। ऐसे ही जो व्यक्ति प्रतिकूलताओं का सामना करता है उसका जीवन निखरता जाता है और जो प्रतिकूलताओं से डरता रहता है मुझसे ये नहीं हो सकता, मैं ये सहन नहीं कर सकता तो ज्ञान के क्षेत्र में पीछे रहेगा। 18-18 घंटे तक पढ़ने वाले व्यक्ति भी देखे, न खाने का होश न पीने का जल्दी-जल्दी जो मिला सो खाया। ऐसे पढ़ने वाले व्यक्ति ही टॉप पर पहुँच पाते हैं।

महानुभाव ! ज्ञान प्राप्त करने के लिये परिश्रम आवश्यक है। सुख-सुविधा को छोड़ना पड़ता है एक बार सुख सुविधा को छोड़ दो,

संकल्प कर लो, चाहे कुछ भी हो जाये पढ़ाई पूरी करके ही रहूँगा चाहे दिन में पढ़ूँ, चाहे रात में। अभी थोड़ी सुख-सुविधाओं का त्याग करने पर, मन को बांध कर इन्द्रियों पर नियंत्रण कर पढ़ाई करने से जीवन बन जाता है। आज तू जिन चीजों के पीछे दौड़ रहा है कल वे तेरे पीछे-पीछे दौड़ेंगी यदि पढ़ाई अच्छी कर ली तो। तो जो सुखी व्यक्ति होता है वह ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता है। अगली बात कही-

व्याधि पीडित:-जिसके शरीर में कोई व्याधि है, कोई रोग है, कोई पीड़ा है वह व्यक्ति चाहकर भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता। उसके मन में निरंतर दु:ख ही दु:ख बना रहता है। कभी सिर दर्द, कभी पेट दर्द, इस बेचैनी से ज्ञान प्राप्त कैसे कर सके। जो व्याधि से पीड़ित है जिसके शरीर में असाध्य रोग लग गया है ऐसा व्यक्ति ज्ञान से वंचित रह जाता है, उसका मन स्थिर नहीं रह पाता।

अगली बात-निद्रालु-जो व्यक्ति नींद बहुत लेता है उसका मन ज्ञान में नहीं लगता। थोड़ा-बहुत पढ़ता है और पढ़ते-पढ़ते भी नींद ले लेता है और क्या पढ़ा भूल गया अथवा ऐसे भी महानुभाव हैं जिन्हें पुण्यात्मा कहें या हीन पुण्यात्मा कहें उन्हें नींद लेने की इंतजारी नहीं करनी पड़ती चाहे सुबह हो या शाम, दोपहर हो चाहे रात्रि उनसे कह दो सो जाओ तो वे दो मिनट में खर्राटे लेने लगते हैं। एक तो ऐसा है जो रात के 1-2 बजे तक भी करवटें बदल रहा है उसे नींद नहीं आ रही और एक व्यक्ति ऐसा है जिसे कभी इंतजारी ही नहीं करनी पड़ती। तो जिन्हें नींद बहुत आती है उनका भी ज्ञान का क्षयोपशम घट जाता है।

काम-जो कामुक है, जिसके अंदर काम वासना विद्यमान है, मन एक बार काम वासना में संलग्न हो गया तो उसे वहाँ से लौटाना कठिन है पुस्तक में फिर पुस्तक नहीं प्रेयसी दिखाई देती है। संसारी प्राणी कहते हैं सूरज में, चंदा में, तारों में, सितारों में सब जगह

वही-वही दिखाई देता है। जब सब जगह वही-वही दिखाई देता है तो मस्तिष्क में ज्ञान का प्रवेश कैसे होगा? एक ही चीज तो आ सकती है उस मस्तिष्क में चाहे ज्ञान की बातें भर लो चाहे विषय वासना की बातें भर लो। काम और वासना बुद्धि को खा जाती है।

गुरुकुल में विद्यापूर्ण कर जब विद्यार्थी आते थे तब उनके पाणिग्रहण संस्कार होते थे क्योंकि विवाहोपरांत मन स्थिर नहीं रहता पढ़ाई में मन नहीं लगता। तो कामुकता भी बुद्धि को खा जाती है, क्षयोपशम गिर जाता है। जो व्यक्ति जितना ज्यादा विषयों का सेवन करता है उसकी बुद्धि उतनी ही मंद रह जाती है जो विषयों से जितना ज्यादा विरक्त रहता है उसका ज्ञान उतना ही सम्यक् वृद्धि को प्राप्त होता चला जाता है। ये छः बातें मैं समझता हूँ आपके लिये आवश्यक हैं यदि इन छः बातों को छोड़ने का प्रयास करोगे तो निःसंदेह आपके जीवन में सम्यग्ज्ञान की वृद्धि होगी। जो सम्यग्ज्ञान आपके आत्मा का हित करने में समर्थ होगा आप सभी का कल्याण हो, शुभ हो, मंगल हो मैं आप सभी के लिये बहुत-बहुत आशीर्वाद देता हुआ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान की जय''

गांठ खोल देखी नहीं

आज हम जीवन के एक ऐसे भव्य और नव्य शिखर की ओर गमन कर रहे हैं, जिसके माध्यम से पूरे विश्व में सुख शान्ति का दिव्य प्रकाश हुआ है। जिसके माध्यम से सत्यं शिवं सुन्दरं की रचनायें जीवंत हुयी हैं जिसके माध्यम से मानव मानवता को पा सका है, जिसके माध्यम से भगवान की भगवत्ता जीवंत है, जिसके माध्यम से प्रकृति प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है यदि वह जीवंतता हमारे पास नहीं है, तब तो हमें यही समझना चाहिए कि हमारा जीवन अभी जीवंत नहीं है, महानुभाव !

''सबके पल्ले लाल, बिना लाल कोई नहीं'
फिर भी रहे कंगाल, गांठ खोल देखी नहीं।।

सबके पास लाल है, हर सीप में मोती है, दूध की हर बूँद में घी है, फूल के प्रत्येक कण-कण में खुशबू है, संसार में ऐसा कोई जीव नहीं जो परमात्मा न बन सके, कोई भी कंकर ऐसा नहीं है जो शंकर न बन सके, सब जगह सब है किन्तु 'फिर भी रहे कंगाल'' गांठ खोल देखी नहीं''-महानुभाव ! जब तक देखा नहीं, तब तक भले ही जेब में करोड़ों का चेक रखा हो, इससे क्या फर्क पड़ता है।

भारत का प्रत्येक नागरिक सक्षम है बस आवश्यकता है तो अपनी शक्ति पहचानने की। जिसमें शक्ति नहीं है वह जिन्दगी भर भीख ही मांगता रहेगा।

एक बार एक व्यक्ति जो चौराहे पर ट्रेफिक पुलिस का काम करता था, उसे लगातार तीन दिन तक एक सा स्वप्न आया। उसे लगा, लगातार तीन दिन एक समय पर, एक जैसा स्वप्न। वह बड़ा चिंतित और सपना भी बड़ा विचित्र था, सपना ये था कि पास के गाँव से पहले एक झोपड़ी जिसमें एक भिखारी रहता है बीचों बीच

तीन फिट गहराई पर हीरे जवाहरात से भरा एक स्वर्ण कलश है। उसने, आस-पास पूछा कि यहाँ कोई गाँव है, आस-पास कोई झोपड़ी है लोगों ने कहा हाँ है। उसे लगा कोई न कोई बात होनी चाहिये उसे बड़ी बेचैनी हुयी वह विद्वानों से मिला, उसने अपने स्वप्न के फल के बारे में कहा उन विद्वानों ने पूछा-यह स्वप्न तुम्हें कब आया, तो वह बोला-शुक्ल पक्ष की सप्तमी, अष्टमी व नवमी तीन दिन लगातार यह स्वप्न आया, वे विद्वान बोले-शुक्ल पक्ष की 7,8,9 के स्वप्न तो 100प्रतिशत सत्य होते हैं। उसने सोचा अब क्या करूँ उस भिखारी को तो 100-200 रु. देकर टरका दूँगा, मैं पुलिस वाला हूँ, संयोग की बात वह चलने को तैयार हुआ, एक और घटना घटित हो गयी, झोंपड़ी में जो व्यक्ति रहता था उसे भी तीन दिन लगातार एक ही समय, एक जैसा स्वप्न दिखाई दिया, उसे भी ऐसा ही स्वप्न आया किन्तु अपनी झोंपड़ी का नहीं, उसे आया कि सामने एक कस्बा है, वहाँ एक ट्रेफिक पुलिस वाला है, वह जहाँ खड़ा होता है नीचे तीन फीट पर एक स्वर्ण कलश गढ़ा है, उसमें हीरे जवाहरात भरे पड़े हैं।

बेचारा भिखारी तो बड़ा व्याकुल हो गया, उसने सोचा कि क्या किया जाये, उसने सोचा मैं देख लूँगा उस पुलिस वाले को। अब क्या यहाँ से पुलिस वाला चला, वहाँ से वह भिखारी चला, दोनों की मुलाकात एक दूसरे से हुयी, दोनों ने एक दूसरे को देखा और दोनों को लगा कि एक दूसरे को सपने में देखा है, इसलिये पहचानने में देर नहीं लगी। फिर भी पूछ लिया-तुम सामने वाले कस्बे से आये हो, हाँ। ट्रेफिक पुलिस वाले हो-बोला हाँ। और तुम झोपड़ी में रहते हो, बोला हाँ। बोले बात क्या है तू मुझे नहीं जानता, मैं तुझे नहीं जानता ऐसे परिचय कैसे पूछा ट्रैफिक पुलिस वाला बोला मुझे झोपड़ी में जाना है, क्यों जाना है? बोला काम है? क्या काम है? कि आधा-आधा, क्या आधा-आधा बात यह है, कि तुम्हारी झोंपड़ी में स्वर्ण कलश गढ़ा है,

उसमें हीरे जवाहरात हैं, मुझे तीन दिन से स्वप्न आया और मैं उसे लेने जा रहा हूँ। वह बोला तुम ट्रेफिक पुलिस वाले हो, तुम जिस चौराहे पर खड़े हो वहाँ उस चौक के तीन फीट नीचे एक स्वर्ण कलश हीरे-मोती से भरा गढ़ा पड़ा है, ऐसा मुझे स्वप्न आया है मैं वह लेने जा रहा हूँ यह सुन-दोनों अपने-अपने स्थान पर दौड़ कर गये, संयोग की बात दोनों ने अपने-अपने स्थान को खोदकर देखा तो वहाँ दोनों को स्वर्ण कलश मिला। दोनों को ही अपनी-अपनी सम्पत्ति का पता नहीं। दोनों ही अब तक आकुल व्याकुल थे, अपने वजूद से अनभिज्ञ थे, वह भिखारी जिंदगी भर भीख मांगता रहा और ट्रेफिक पुलिस वाला नौकरी।

महानुभाव ! हमें भी सपने आते हैं किन्तु अपनी सम्पत्ति के नहीं दूसरे की सम्पत्ति के। शायद हमें भी कोई हमारी सम्पत्ति को बता जाये और वह स्वप्न बताने वाले होते हैं, संत पुरुष, गुरुजन। वे बताते हैं कि अपने अंतरंग को तीन फीट खोदो, वहाँ से मन की, वचन की, काय की परत को अलग करो पुनः चेतना के धरातल पर पहुँचते ही अनंत गुणों का भण्डार भरा पड़ा है, बस देखने की बात है, खोदने की बात नहीं। महानुभाव ! किन्तु फिर भी भीख मांग रहे हैं-गांठ खोल देखी नहीं। सबका स्वभाव अनंतज्ञान अनंतसुख प्राप्त करने का है, कोई भी संसार का ऐसा प्राणी नहीं जिसका स्वभाव सिद्ध बनने का न हो, अभव्य जीव का स्वभाव भी सिद्ध बनने का है किन्तु वह कभी प्रगट नही होगा, तो महानुभाव ! आवश्यकता है तो गाँठ खोलकर देखने की। गाँठ कैसे खुले, क्या उपाय है गाँठ खोलने का, कैसे मिले लाल। लाल का आशय है अधिकार! कई बार ऐसा होता है कि हम वस्तु के मालिक तो होते हैं किन्तु वास्वत में मालिक की मालकियत नहीं होती। ऐसा कैसे-? वस्तु के मालिक हम हों और उपयोग कोई और करे। हाँ ऐसा भी होता है, मकान तुमने बनाया 10

लाख का और दूसरा व्यक्ति 1000 रु. महीने पर वहाँ रहकर मस्ती कर रहा है, फैक्ट्री तुम्हारी किन्तु तुमने किराये पर दे दी तो बोर्ड उसके नाम का लगा हुआ है। गाड़ी तुम्हारी है, बड़े उत्साह से लाये थे किन्तु किराये पर दे दी और खुद पैदल चल रहे हो। कई बार जीवन में ऐसा होता है कि हम मालिक तो होते हैं किन्तु सही मायने में हम उसकी मालकियत को नहीं पा पाते हैं। जब तक वस्तु का उपयोग कर न सके तो वस्तु हमारी कह भी दी जाये तो क्या फर्क पड़ता है, कोई व्यक्ति तुम्हारे नाम मकान भी कर दे और कह दे अगर पैर भी रखा तो पैर तोड़ दूँगा, यह प्याऊ तुम्हारे नाम से बनी है किन्तु तुम इसका पानी पी नहीं सकते, जब पानी पी नहीं सकते तो ऐसी प्याऊ आदि का क्या फायदा। दूर से बैठकर बस देखते रहो। शायद ऐसी ही अवस्था संसार में हमारी अनादि काल से रही है, हम भी दूर से देखते रहे हैं वस्तु का उपयोग नहीं कर सके।

सबके पल्ले लाल हैं, किन्तु लाल को पाकर भी मालामाल नहीं हुये, उसे पाकर भी हम बेहाल हैं, उसे पाकर हम निहाल नहीं हो सके, उसे पाकर भी हमें ऐसा लगा जैसे कि हम कुछ पा ही नहीं सके।

महानुभाव ! इसका सबसे बड़ा कारण यही रहा ''गांठ खोल देखी नहीं'' जब तक गांठ नहीं खुले, चाहे उसके अंदर सोने की ही ईंट बंधी हो चाहे मिट्टी से बनी हो, जब तक खोल कर देखी नहीं तब तक दोनों एक बराबर हैं।

एक संदूक में कपड़े में लिपटा हुआ पारस मणि पत्थर रखा हुआ था, एक व्यक्ति चुपचाप गया और उसने सोचा अपना 10-20 क्विन्टल लोहा सोने का बना लूँ। अंधेरे में उसने सब कुछ किया, किन्तु एक सुई भी सोने की न कर सका। वह बड़ा परेशान कि यह वास्तव में पारसमणी है या नहीं, कितने ही लोग यहाँ से अपना लोहा

लाकर सोना कर गये, किन्तु मेरा लोहा, लोहा ही रहा, क्या कारण है ? वह महात्मा के पास जाता है, कहता है-प्रभो ! मैं समझ नहीं पाया कि पारसमणि भी पक्षपात करती है, दूसरे के लोहे को तो सोना बना देती है और मेरे लोहे को सोना नहीं बनाती। महात्मा ने यही कहा-

''गांठ खोल देखी नहीं''

ये पारसमणि पक्षपात नहीं करती। यह कपड़े में बंद है, तूने खोलकर देखी ही नहीं, अतएव तुम कितने भी अच्छे से अच्छा लोहा ले आना, किन्तु वह सोना नहीं हो सकेगा। गांठ को खोलकर देखना बहुत जरूरी है।

कुछ युवा रात्रि के पूर्व प्रहर में कुछ ज्यादा पी गये और नशा ऐसा चढ़ा कि नगर के बाहर जाना पड़ा। नदी किनारे घूमते हुये उन्होंने सोचा, आज तो हम नदी की सैर करेंगे। संयोग की बात वहाँ नाव भी मिली और उसमें सभी बैठ गये और नाव को खेने लगे। सभी को बड़ा आनन्द आ रहा है, सभी बड़ी मस्ती कर रहे हैं, पूरी रात वे नाव को चलाते रहे।

प्रात:काल कुछ महिलायें नदी किनारे पानी लेने आयी उन महिलाओं में कुछ उनकी पत्नियाँ भी थीं। उन युवाओं को लगा हमारी पत्नियाँ यहाँ कैसे पहुँचीं, हम रात भर नाव चलाते इतना दूर आ गये, यहाँ हमारी पत्नियाँ कैसे ? और उन्होंने पूछा-तुम लोग यहाँ पर कैसे आयीं ? वे बोली-हम तो यहाँ पानी लेने आये हैं और आज कोई नये थोड़े ही आये हैं, हम तो यहाँ रोज आते हैं। वे युवा बोले हम रात भर नाव चला कर कई मील दूर तक आ गये, तुम यहाँ कैसे ? तभी पत्नियाँ बोलीं-लगता है अभी उतरी नहीं ? कई मीलों दूर कैसे आ गये घाट तो वही है, तब भी महिलाओं ने यही कहा-''गांठ खोल देखी नहीं'' नाव तो वहीं बंधी है, जब नाव वहीं बंधी रहेगी तो चाहे

उसे रात भर खेओ, दिन भर खेओ, यदि उसकी गांठ नहीं खोलोगे तो कहीं न पहुँच पाओगे, गांठ को खोल देते तो नि:संदेह वह नाव किनारे पर पहुँच जाती।

लगता है संसार समुद्र में हमारी नाव भी ऐसे ही चल रही है, हम दिन रात पुरुषार्थ करते हैं कि हमारा कल्याण हो जाये, किन्तु हमारे चित्त की गांठ खुल नहीं पाती है हमारी आत्मा कहीं न कहीं किसी पर पदार्थ से बंधी हुयी है, यह मोह की गांठ जब तक न खुलेगी तब तक कल्याण असंभव है।

महानुभाव ! भगवान महावीर स्वामी का नाम ''णिग्गंठ बुद्ध'' भी आता है, संस्कृत में कहें तो ''निर्ग्रंथ बुद्ध''। गंठ का आशय होता है ''गांठ'', जिसने अपने अंदर की सब गांठ खोल दी हों, शरीर पर भी कोई गांठ नहीं हो, वह निर्ग्रंथ है।

बिना गांठ के एक कोपीन भी शरीर पर टिकती नहीं है, बिना गांठ के सिर पर साफा भी नहीं टिक पाता है। गांठ बड़ी मजबूत होती है, गांठ बड़ी पीडादायी व दु:खद होती है, जब तक गांठ न निकले तब तक व्यक्ति को लगता है मेरे प्राण कंठ में अटके हुये हैं। गांठ एक ऊपर की भी होती है, अंदर की भी होती है। शरीर पर गांठ हो तो देह दृष्टि सुंदर दिखाई नहीं देती, कुरूप प्रतीत होती है, जिस शरीर में गांठ-गांठ सी दिखायी दें तो वह शरीर शोभनीय प्रतीत नहीं होता और जिसके अंदर में गांठ हो तो वह व्यक्ति भी परमात्मा की दृष्टि में शोभनीय नहीं होता। किसी के फोड़ा हो जाये और फोडे की गांठ न खुले तब तक फोड़ा ठीक नहीं होता है, उस गांठ को खोलने के लिये कभी-कभी चीरा भी लगाया जाता है, बिना गांठ खुले निराकुलता नहीं मिलती उसे निकालना जरूरी है। ''फोडा क्यों नहीं फोड़ा, नहीं फोड़ा इसलिये उसका नाम है फोड़ा।'' जिसने फोड़े को ढांक कर

रखा है अंदर बढ़ता चला जायेगा, नासूर बन जायेगा इसलिये उस फोड़े में विद्यमान पस की गांठ जो कि उसकी जननी है, उसे निकालना बहुत जरूरी है।

महानुभाव ! गांठ बहुत ही कड़क होती है। वृक्षों में भी आपने देखा होगा जिन वृक्षों में गांठ होती है वह बड़े मजबूत होते हैं, पत्थरों में भी जहाँ गांठ होती है वह पत्थर बड़ा कठिन होता है, उस पत्थर की मूर्ति बनाना बडा मुश्किल होता है। गांठ सहज नही है उसका खोलना जरूरी है। जब शादी होती है तब भी गांठ बांधी जाती है किन्तु कब तक 1-2 दिन, पुनः वह खोलनी तो पड़ती ही है गांठ के साथ कोई कब तक रह सकता है। प्रत्येक द्रव्य का स्वतन्त्र परिणमन होता है, किसी द्रव्य का किसी अन्य द्रव्य के साथ गठबंधन नहीं है, क्योंकि गठबंधन की सरकार कब टूट जाये इसका कोई भरोसा नहीं है। इसलिये गठबंधन पर विश्वास थोड़ा कम करना। जो व्यक्ति निर्द्वन्द, निरालम्ब व स्वतन्त्र होते हैं अपने आप में सक्षम होते हैं उन्हें दूसरों के साथ गांठ बांधने की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि जहाँ-जहाँ गांठ होती है वहाँ-वहाँ नियम से दुःख है, कपट है, पीड़ा है, इस गांठ को निकालना भी जरूरी है। बाहर की गांठ खोलना भी सहज नहीं है कई बार गांठ खुलने से अंदर की पोल खुल जाती है।

यह गांठ हमारा वैभाविक परिणाम है यह चित्त की स्वाभाविक, सहज अवस्था नहीं है, सहज अवस्था है दिगम्बर मुनि अवस्था जहाँ गांठ की आवश्यकता नहीं। भगवान महावीर स्वामी को णिग्गट्ठ कहा। जिनके पास कोई गांठ नहीं है, कोई ग्रंथी नहीं है। आपने ईख का पेड़ देखा होगा उसकी हर पोर के बाद गांठ होती है, जहाँ गांठ होती है वहाँ से ईख की उत्पत्ति होती है, ऐसे ही हमारे जीवन में जहाँ-जहाँ कर्मों की गांठ होती है वहाँ-वहाँ नियम से संसार की वृद्धि होती है। नया जन्म वहीं से होता है जहाँ गांठ लगी है, जिसके चित्त

में कोई गांठ नहीं है ऐसा व्यक्ति संसार में दुबारा जन्म ले ही नहीं सकता इसलिये गांठ खोलना बड़ा कठिन है। संसार में ऐसे बहुत से प्राणी मिलेंगे जो गांठ लगाना सिखा सकते हैं, गांठ खोलना नहीं। गांठ को काटना बड़ा आसान है याद रखो, जब भी रस्सी काटी जाती है तो दो विभागों में बंट जाती है, वह एक अखण्ड नहीं रह पाती इसलिये कभी गांठ को काटने का दुस्साहस मत करो गांठ को खोलो। गांठ के खोलने से एक और लाभ है, गांठ ज्यों-ज्यों खुलती जायेगी त्यों-त्यों जीवन की रस्सी उतनी लम्बी होती चली जायेगी। 100 हाथ की रस्सी हो 50 गांठ लगा दो वह सौ हाथ से 20 हाथ की रह जायेगी। कहीं ऐसा तो नहीं है यही समीकरण हमारे जीवन का भी हो। जिस व्यक्ति के चित्त में जितनी ज्यादा गांठ होती हैं समझना वह अल्पायु वाला होता है और जिसके चित्त में जितनी अधिक सरलता, सहजता, स्वच्छता, निर्मलता होती है वह व्यक्ति उतना ही दीर्घजीवी होता है। जिस व्यक्ति के चित्त में जितनी ज्यादा गांठे होती हैं उसके चित्त में उतनी ज्यादा पीड़ा होती है किन्तु जिसका चित्त सरल सहज है, निर्मल है भगवान की वेदी की तरह पवित्र व मस्तक झुकाने लायक है, ऐसे चित्त को संसार में खोज पाना बड़ा कठिन है।

संसार और कुछ भी नहीं है केवल संक्षिप्त में संसार की परिभाषा इतना ही जान लेना-''चित्त की कुटिलता ही संसार है।''

''चित्तमेव हि संसारो रागादि क्लेश वासिता''

जब-जब हमारा और तुम्हारा चित्त जटिल रहेगा, कठोर रहेगा, कुटिल रहेगा ऊबड़ खाबड़ रहेगा और जब तक संसार रूपी उपजाऊ व्यवस्था देता रहेगा तब तक संसार से मुक्ति होना असंभव है जैसे ही हमारा चित्त समतल हो जायेगा, नि:संदेह मान लेना उस समय से ही हमारा मोक्ष का रास्ता प्रारंभ हो जायेगा।

महानुभाव ! ''गांठ खोल देखी नहीं''-मजे की बात यह है कि गांठ जितनी अधिक मोटी होती है उसका खोलना उतना ज्यादा सरल है और जितनी छोटी गांठ होती है उसका खोलना उतना ज्यादा कठिन होता है। तुम्हारे मन में जिसके प्रति मोटी गांठ पड़ी है, झगड़ा हो गया, मारपीट हो गयी दुनिया के लोग जानते हैं कि तुम्हारा उसके साथ बैर भाव है, तो उसके साथ बैर की गांठ खोलना सरल है, किन्तु जो ऊपर से तो बड़ा सरल और सहज है, अंदर से गरल ही गरल है ऐसे व्यक्ति की चित्त की शुद्धि बड़ी असंभव है। रस्सी में गांठ लग जाये तो आप खोल भी लो किन्तु प्लास्टिक के पतले से तार में गांठ लगा दो तो खोलना बड़ा मुश्किल है। प्राय:कर के लोग जब भी गांठ को खोलते हैं, जब खोलते-खोलते नहीं खुलती तो खींचते हैं और ध्यान रखना जब-जब भी गांठ खीचीं जाती है तो वह मजबूत होती चली जाती है, इसलिये खींचो मत। न खीचों न खिचो। उसके दोनों कोनों को ढीला कर दो तो गांठ थोड़ी ढीली होती चली जायेगी। गांठ कभी गुस्से से नहीं प्यार से खोली जाती है। आज तक तुमने दुनिया के लोगों के चित्त में पड़ी गांठों को अपने क्रोध से, अहंकार से, शान शौकत से खोलने का प्रयास किया है एक बार भी प्रेमपूर्वक प्रयास किया होता तो चित्त की सभी गांठें खुल गयी होतीं। जो व्यक्ति जितना ज्यादा अहंकारी होता है, क्रोधी होता है, उसकी चित्त की गांठ उतनी ही अधिक कठोर होती है। जो अपने चित्त की गांठ न खोल सका वह दूसरे के चित्त की गांठ क्या खोल सकेगा ? जिसके स्वयं के हाथ पैरों में बेड़िया पड़ी हैं ऐसा व्यक्ति दूसरे के बन्धन को कैसे खोल सकता है।

महानुभाव ! हम दूसरों को बन्धन से मुक्त करना चाहते हैं किन्तु स्वयं की गांठें नहीं खोलना चाहते, हम चाहते हैं ऊपर से चिकने-चुपड़े दिखना कि हमसे भला और कोई नहीं किन्तु अंतरंग में अपनी बुराईयों

को ढककर रखना चाहते हैं। कोई भी व्यक्ति ऐसा मिलना कठिन है जो स्वत: ही आकर के अपनी बुराईयों को उगल दे नहीं उगलेगा जैसे मकान और दुकान बाहर से सजाये जाते हैं ऐसे ही चेहरे सजाये जाते हैं। अंदर के स्टोर रूम में कबाड़ खाना पड़ा रहता है, उसको तो होली-दिवाली में भी नहीं देखते कि उसमें कितनी गांठें पड़ी हुयी हैं वहाँ पर तो सांप-बिच्छू भी पैदा हो जाते हैं, वहाँ पर तो दृष्टि ही नहीं जाती, उपयोग नहीं जाता यह तुम्हारे मकान की नहीं, प्रत्येक चित्त की बात है, सबके चित्तों में प्राय:कर के ऐसा ही पड़ा है। बाहर से रंगाई पुताई करते हैं, किन्तु अंदर से करने वाले कम लोग होते हैं।

आप कभी खजुराओ गये होंगे, वहाँ पाहील श्रेष्ठी द्वारा बनवाये गये 15वीं शताब्दी के गगनचुम्बी भगवान अजितनाथ, पार्श्वनाथ आदि के मंदिर हैं जहाँ बाहर इतनी नक्काशी है कि 4 अंगुल कहीं जगह भी नहीं जहाँ शिल्पकारों ने नक्काशी न की हो किन्तु अंदर जाकर देखना, एक सामान्य से पत्थर पर वीतरागी भगवान हैं। मंदिर के अंदर कहीं कोई कलाकृति, चित्रकारी, शिल्पकारी नहीं, एक दम साधारण है क्यों ? वह इसलिये कि जिसे बाहर की चित्रकारी चाहिये वह बाहर घूमता रहे, अंदर आना तभी संभव है जब चित्त सरल हो जाये। वीतरागी को पाने का वही अधिकारी होता है जिसका चित्त सहज सरल हो। मंदिर में आकर के बाहर की चित्रकारी नहीं दिखाई देगी और बाहर रहेगा तो बाहर में सरलता दिखाई नहीं देगी। बाहर की सरलता तारक नहीं मारक है, बाहर की सरलता साधक नहीं बाधक है इसलिये सरलता बाहर से नहीं अंदर से आना चाहिये, आप कहेंगे यदि बाहर सरलता हो तो इसमें क्या हर्ज है? हम कहेंगे बहुत बड़ा हर्ज है, बाहर से यदि सरलता मिल जाती है तो मन को बड़ा संतोष मिल जाता है, 4 लोग कहने वाले हो जाते हैं, जब बाहर से प्रशंसा करने वाले मिल जाते हैं तो अंदर से सरल होने की क्या आवश्यकता

? वह बाहर की सरलता एक परदे का कार्य करती है और जितना बड़ा परदा होता है उसके पीछे उतने ही बड़े-बड़े दुष्कृत्य होते चले जाते हैं, इसलिये आवश्यकता है उस बाहर के पर्दे को हटाने की।

महानुभाव ! इन परदों की जिंदगी में कोई सार नहीं है, इन परदों की जिंदगी में कोई उपहार नहीं है, इन परदों की जिंदगी में कोई सम्यक् त्यौहार नहीं है। ये तो परदे हैं-स्व दे नहीं। पर हैं स्व नहीं। जो दूसरों को देने वाले हैं उनसे मोह क्यों करना, उसे तो दूर से छोड़ देना चाहिये।

'' शांतिनाथ भगवान की जय ''

श्रद्धा-धर्म का मूल

चित्त की सरलता, सहजता, निर्मलता और धवलता साथ ही चेहरे की प्रसन्नता हमारी कार्यक्षमता को बढ़ाने वाली होती है। चित्त की प्रसन्नता से जीवन में पुण्य का आश्रव शतगुना अधिक होता है, चित्त की निर्मलता धर्म की एक आधार शिला होती है, संबंधों का विस्तार करने वाली होती है, चित्त की विशुद्धि ध्यान के लिये उर्वरा भूमि की तरह से सार्थक होती है। जिसके चित्त में मलिनता है, अशुद्धि, विकार है ऐसा चित्त उस परम आनंद का अनुभव नहीं कर सकता जो हमारा स्वभाव है।

एक महाशय अपने घर से तीर्थ यात्रा के लिये जा रहे थे, अपने नौकर को बुलाया और कहने लगे, इस वापिका (पुष्पवाटिका) में सुंदर-सुंदर पुष्प खिल रहे हैं, उन पुष्पों का सौंदर्य मेरे चित्त को आकर्षित कर रहा है, मैं इन्हें छोड़कर नहीं जाना चाहता किन्तु फिर भी तीर्थ यात्रा का पुण्य अपने आप में बहुत बड़ा होता है इसलिये मैं जा रहा हूँ, किन्तु एक बात का ध्यान रखना-ये खिलते हुए पुष्प कहीं मुरझा न जायें इसलिये यथा समय पानी का सिंचन करना, देखभाल करना कहीं पशु-पक्षी आकर पौधों को उखाड़ न दें। नौकर ने हाथ जोड़कर अपने स्वामी से कहा-आप निश्चिंत रहिये, आप जब वापस आयेंगे तो आप देखेंगे कि यह पुष्प वाटिका कितनी वृद्धि को प्राप्त हो रही है, मैं अहर्निश इसकी देखभाल करूँगा। वह सेठ जी तीर्थ यात्रा करने निकल गये, बहुत आनंद का अनुभव हुआ। किसी तीर्थक्षेत्र पर पहुँचे-वहाँ किसी फुलवारी को देखा तो उन्हें अपनी फुलवारी की याद आ गयी-कहीं वे पुष्प मुरझा न गये हों, कहीं सूख न गये हों, कहीं मेरे वियोग में रो न रहे हों-वे चिंतित हो गये-'मोह में व्यक्ति इतना खो जाता है और सोचता है कि पर वस्तु मेरे लिये

चिंतित होगी, किन्तु पर वस्तु कभी किसी के लिये चिंतित नहीं होती-चिंता मोही व्यक्ति के चित्त में होती है, निर्मोही के पास चिंता वैसे ही नहीं पहुँच पाती जैसे प्रकाश व सूर्य की किरण के पास अंधकार।

वे महाशय तीर्थयात्रा से लौटे और सीधे अपनी पुष्प वाटिका में गये, पुष्प वाटिका को देख उनकी आँखों में आँसू आ गये, मैं तीर्थ यात्रा करने नहीं जाता तो ठीक रहता, देखो तो पुष्प वाटिका की क्या हालत हो गयी, सभी पुष्प मुरझा गये हैं, सूख गये हैं, कुछ नीचे पड़े हैं। वह नौकर आकर बोला-सेठ जी ये पुष्प अपने महाराज का वियोग सहन न कर सके इसलिये इनकी ऐसी हालत हो गयी है। सेठ जी बोले नहीं-तुमने कहीं चूक कर दी है इनकी सुरक्षा, सेवा देखभाल ठीक प्रकार नहीं की इसलिये इनकी अकाल मृत्यु हो गयी। तुमने बड़ा अन्याय किया है। नौकर बोला-सेठ जी चाहे तो आप मुझे दण्डित कर सकते हैं किन्तु मैंने दिन में दो बार तीन बार ही नहीं बार-बार पानी का सिंचन किया है, किन्तु फिर भी ये पुष्प मुरझा गये, मैंने एक-एक पुष्प पत्ती पर पानी डाला है, रात-रात भर इनकी सेवा की है किन्तु फिर भी ये मुरझा गये आपके वियोग को सहन नहीं कर सके। सेठ जी बोले-गलती तुम्हारी नहीं है, गलती मेरी है जो मैं तुम्हें पूरी बात समझा कर नहीं गया, यदि मैंने पूरी बात समझा दी होती तो पुष्प वाटिका की ये हालत नहीं होती।

कई बार हमारे जीवन में भी अधूरी बात समझ लेने से हमारे जीवन की पुष्प वाटिका उजड़ जाती है, मुरझा जाती है, सूख जाती है। सेठ ने कहा-जहाँ तुमने पानी डाला-वहाँ तो सिंचन की आवश्यकता ही नहीं थी। नौकर बोला फिर कहाँ सिंचन करना था? मैंने तो बाजार में देखा है माली-पुष्पों का ढेर लगाकर पानी डालता है, मैंने भी एक-एक पुष्प पर सिंचन किया है-सेठ जी बोले-वे पुष्प प्राणहीन

होते हैं, उनमें कोई जड़े नहीं होतीं। जो प्राणहीन होते हैं उनके चेहरों का सिंचन किया जाता है क्योंकि उनका कोई आधार ही नहीं है, जड़ ही नहीं है किन्तु ये पुष्प मूल्यहीन नहीं, इन पुष्पों के प्राण पुष्पों में नहीं जड़ों में रहते हैं, जहाँ जड़ है वहाँ प्राण हैं वहीं सिंचन करना आवश्यक है। तुमने प्राणों को सुखा दिया। जब तक पुष्पों की सेवा करते रहेंगे तब तक वृक्ष मृत तुल्य हो जायेगा।

कहीं ऐसा तो नहीं हमारी प्रवृत्ति भी ऐसी ही चल रही हो, हम भी जहाँ प्राण हैं वहाँ सिंचन न करके जहाँ पुष्प और फल लग रहे हैं उनका सिंचन करने में लगे हों, कहीं ऐसा तो नहीं हम बिना नींव के ही इमारत बनाने की कोशिश कर रहे हों, बिना आत्मा के शरीर का निर्माण करने में लगे हों, धर्म की क्रिया करते हुये उसके मूल को भूल रहे हों।

पूज्य आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी धर्म की जड़ बता रहे हैं-

दंसण मूलो धम्मो-यदि धर्म की कहीं जड़ है, मूल है तो वह दर्शन है, सम्यक्त्व है, श्रद्धा है, निर्मल दृष्टि है, आस्था, विश्वास है, आत्मा की निज प्रतीति है, रुचि है, आत्मा का संवेदन है। उसके बिना धर्म का वृक्ष कभी भी वृद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता। वह धर्म का वृक्ष दीर्घ काल तक जीवित नहीं रह पायेगा। वह तुम्हें दिखाई तो देगा किन्तु पुष्प सुगंध नहीं बिखेर पायेगा। कागज के पुष्प ज्यादा समय तक अपनी सुगंध बिखेर नहीं सकते, कागज के पुष्पों में वह कोमलता और सौन्दर्यता नहीं होती।

आचार्य भगवन् समंतभद्र स्वामी जी रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते हैं-

न सम्यक्त्व समं किंचित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोश्रेयश्च मिथ्यात्व समं नान्यत्तनुभृताम्॥

सम्यक्त्व के समान तीनों लोकों में तीनों कालों में शरीर को धारण करने वाले संसारी प्राणियों के लिये कल्याणकारक और कोई चीज है ही नहीं, न कभी थी, न हो सकेगी। मिथ्यात्व से बढ़कर अकल्याणकारी न कुछ है, न था और न कभी हो सकेगा। ये धर्म का मूल है। इसे काटकर फूल पत्तों पर पानी देते रहे तो वृक्ष वृद्धि को प्राप्त नहीं हो सकेगा।

महानुभाव ! आस्था ही धर्म का प्राण है, श्रद्धा ही धर्म की प्राण वायु है, सम्यक्त्व ही धर्म की चेतना का आधार है और जब तक अंतरंग में समीचीन समर्पण श्रद्धा नहीं है तब तक धर्म की बहुत सारी क्रियायें की जा सकती हैं, धर्म के बारे में अच्छे-अच्छे व्याख्यान दिये जा सकते हैं, धर्म के बारे में अच्छे-अच्छे सूत्र लिखे जा सकते हैं, प्रवचन दिये जा सकते हैं, कई पुस्तकें शास्त्र लिखे जा सकते हैं किन्तु धर्म को, धर्म के स्वाद को पाया नहीं जा सकता है। ''श्रद्धा के बिना धर्म को गाया तो जा सकता है किन्तु धर्म को पाया नहीं जा सकता।'' एक ऐसा व्यक्ति जिसने शक्कर को कभी खाया ही न हो-वह उसके बारे में पढ़कर, सुनकर बहुत सी बातें कह सकता है, पुस्तकें लिख सकता है किन्तु उसके बारे में अपनी अनुभूति नहीं बता सकता। शक्कर का नाम लेने मात्र से मुख में मिठास नहीं आ जाती। पानी का नाम लेने से क्या कभी किसी की प्यास बुझते देखी, कोई अच्छी वस्तु का नाम लेने मात्र से वह प्राप्त नहीं होती, उसको प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ करना पड़ता है।

लड्डू-लड्डू बोलते, जीभ न चखे मिठास,
पानी-पानी बोलते किसकी बुझती प्यास।
जीवन सारा खो दिया ग्रन्थ पठंत-पठंत,
तोता-मैना की तरह नाम रटंत-रटंत॥

श्रद्धा के बिना हम कितना ही पढ़ते जायें-हमारा पढ़ना निरर्थक है। बिना गमन किये रास्ते की जानकारी नहीं हो सकती, बिना स्वाद

लिये घर में बनी रसोई बेकार है, आँख खोले बिना उजाले का कोई महत्त्व नहीं-

हर उजाला बेअमल के वास्ते बेकार है,
गर आँख ही खोले नहीं, तो कोई उजाला क्या करे।

सबसे पहली बात आँख खोलने की है आँख खोलते ही हमें हमारा जहान दिखाई देता है, संसार दिखाई देता है, हमारा वैभव दिखाई देता है और दृष्टि के खुलते ही हमें हमारी सृष्टि दिखाई देती है। जब दृष्टि बंद है तब तक हमारे लिये सब कुछ लुप्त है जिसके पास आँख नहीं उसके पास कुछ नहीं-लोग कहते हैं-

''आँख नहीं तो जग गया, कान गये तो सब गया''

यदि आँख नहीं तो सुनकर ही अपनी विशुद्धि बढ़ा सकते हो, किन्तु जब सुनने की ही शक्ति नहीं है, तो किस प्रकार परिकल्पना करोगे ? जो चीज नहीं जानते हो उसे कैसे सीख पाओगे। अंधे को दृश्य के बारे में समझाना बड़ा कठिन है, जिसके पास दृष्टि है उसके लिये दृश्य सार्थक है, जिसके पास दृष्टि नहीं उसके लिये सौन्दर्य का पुंज नश्वर है व्यर्थ है।

एक बार अंधा पुरुष किसी विद्वान् की सभा में धर्म का उद्‌बोधन सुनता था। वहाँ विद्वान् बड़े मर्म की, शुभ-अशुभ कर्म की बात बताते थे जिससे वह बड़ा आनंदित होता, वह व्यक्ति जन्म से अंधा था शक्कर की बात कही तो पूछा कैसी होती है छोटी-बड़ी लम्बी कैसी ? किन्तु जैसे ही शक्कर के चार दाने खाये-वाह अरे यह तो मीठी होती है, नमक कैसा ?-जैसे ही डली मुँह में डाली मुँह खारा हो गया। उसे सुंघा कर सुगंध व दुर्गंध के बारे में बताया। ऐसे ही उसे कई बातों की जानकारी दी, वह वस्तु के संबंध में परिकल्पना कर लेता और उसे विश्वास हो जाता, एक दिन पंडित जी बोले-हमारी

आत्मा में दिव्य ज्योति की तरह से प्रकाश है, आत्मा में यदि ज्ञान का प्रकाश न हो तो वह अंधकार में पड़ी है अथवा अंधी कहलाती है-वह सोचता है, मैं आँखों से तो अंधा हूँ ही कहीं ऐसा न हो मैं आत्मा से भी अंधा हो जाऊँ-आत्मा में दिव्य ज्योति प्रकाश होता है वह मेरी आत्मा में है या नहीं ? उसने कहा-पंडित जी जिस प्रकाश की आप बात कर रहे हो क्या यह किसी लड़के का नाम है या यह ज्योति किसी लड़की का नाम है, आप कह रहे हैं प्रकाश/ज्योति के बिना जिंदगी अधूरी है, यह ज्योति/प्रकाश क्या है ? पंडित जी महाराज कहने लगे यह ज्योति हमारी आत्मा का स्वभाव है, प्रकाश जैसे-सूर्य, चांद आदि का होता है। बोला किन्तु यह है क्या चीज? पंडित जी महाराज कहने लगे वह सफेद होता है-सफेद कैसा-वे बोले जैसे बगुला होता है बिल्कुल सफेद। जैसे ही थोड़ा हाथ टेड़ा करके समझाने का प्रयास किया वह बोला-मैं समझ गया-प्रकाश ऐसा बिल्कुल टेड़ा होता है, पंडित जी महाराज परेशान हो गये, बड़ा मुश्किल है उस अंधे को समझाना, उसका केवल एक ही उपाय है, उस अंधे की आँखें खोल दो। जब तक उस अंधे की आँखें नहीं खुलेंगी तब तक संसार के अनंत उपाय निष्फल हैं उस अंधे के लिये प्रकाश को समझाने में। संसार के सभी उपाय बेकार हैं अंधे को वर्ण (रंग) का ज्ञान कराने में।

आज वर्तमान में हमारे ग्राम, नगर, शहर में युवा पीढ़ी धर्म से दूर होती जा रही है तो उसका केवल एक ही कारण है-हमारे बुजुर्ग, हमारे सन्मार्ग दृष्टा, हमारे महापुरुष, हमारे आदर्श हमारे आगे चलने वालों ने युवाओं के नेत्र खोलने का पुरुषार्थ नहीं किया, जबरदस्ती गला दबाकर यह कहलवाना चाहा कि बोल-प्रकाश सफेद होता है। ऐसा बुलवाने से प्रकाश की अनुभूति न हो सकेगी। उसके लिये आवश्यक होता उनके नेत्रों को खोल दिया जाता जिससे वह तर्क नहीं करता, कुतर्क नहीं करता, वह आपकी बात को मानने से इन्कार नहीं

करता। आवश्यकता है यदि अपनी आँखें खुल गयी हों तो सामने वाले की आँखें खोल दी जायें। आज तो ऐसी हालत है-

आज दुनिया अटकी है केवल नारी के बालों में
ज्योति कम धुआं ज्यादा है जलती हुयी मशालों में॥

जहाँ कहीं भी धर्म की मशाल किसी संत के हाथ में, किसी विद्वान् के हाथ में दिखाई देती है तो उसमें ज्योति कम है धुँआ ज्यादा है जिससे धुँये के कारण आँख पूर्ण रूप से खुल नहीं पाती बंद हो जाती है। अपने पास दिव्य प्रकाश रूपी केवल ज्ञान नहीं है जिससे आँखें चौंधियाँ जायें, आज तो मंद प्रकाश है और हम कभी भी बंद कमरे में सूर्य को ला नहीं सकते। आज पंचमकाल में भरत क्षेत्र बंद कमरे की तरह से है, केवलज्ञान रूपी सूर्य का यहाँ पर आना असंभव है। मन:पर्यय ज्ञानरूपी चन्द्रमा का आना असंभव है और इस कलिकाल में तो श्रुत केवली भी कहीं दिखाई नहीं देते, अवधिज्ञानी मुनि भी 500 वर्षों में एक होंगे उनका ज्ञान भी थोड़ा सा क्वचित् कदाचित् होगा-जैसे कहीं कमरे में बाहर ट्यूब लाइट जली हो और बुझ गयी हो, अंधकार के कमरे में हमें अपने वैभव को देखना है। लाइट नहीं है, भले ही बल्ब पचासों लगे हैं, सैकड़ों टार्च हैं किन्तु बैटरी लो है, दिया सलाई भी नम पड़ी है, अब बताओ कौन सी जुगाड़ लगायें जिससे अंधकार में भटके व्यक्ति को सही राह पर लाया जा सके।

जो स्वयं अंधा है वह दूसरे अंधे को क्या सही राह पर ला पायेगा। जिसके पास स्वयं दृष्टि नहीं है, जिसके हाथ स्वयं कटे हैं वह दूसरे के हाथ में क्या कंगन बांध पायेगा कहने का आशय है आज के संवाददाता खुद तो गहरे अंधकार में हैं और दूसरों की मशालों में प्रकाश देने का प्रयास कर रहे हैं-मुझे लगता है इन 2500 वर्षों में मशालों की ज्योति बहुत कम हो गयी है, अब तो धुँआ भी घट गया है, मशालों में लगा कपड़ा भी जल गया है, अब तो केवल डंडे रह

गये हैं-वे आपस में टकराते हैं, मेरे पास ज्यादा ज्ञान है और जैसे मशालें पहले चारों तरफ प्रकाश देने के लिये घूमती थीं किन्तु आज किसी के सर फोड़ने के लिये घूमती हैं। अंधेरे में हाथ में उठाई मशालें खतरनाक होती हैं, अंधे के हाथ में दी हुयी एक नहीं चार मशालें भी बेकार हैं उसे क्या मालूम उसमें ज्योति है या नहीं। अंधे के हाथ में मशाल स्वयं के लिये ही नहीं सामने वाले के लिये भी खतरनाक होती है।

आचार्यों ने कहा-दृश्य कैसा है इसकी समीक्षा मत करो अपनी आँखों को देखो-तुम्हारे पास दृग है या नहीं। जिनके पास दृग नहीं है उनके लिये दृश्य का कोई महत्व नहीं है। आचार्यों का सबसे पहला सूत्र-जीवन में यदि सबसे बड़ा काम करना चाहते हो तो सबसे पहले अपनी आँखों को खोल लो, जिस डॉक्टर ने अपनी आँखों का उपचार कर लिया है तो संभव है वह अन्य किसी रोगी की आँखों को भी खोल सकता है, ज्योति प्रदान कर सकता है। किन्तु ऐसे डॉक्टर के पल्ले मत पड़ जाना कि तुम्हें तो कम दिखता हो और डॉक्टर को बिल्कुल ही नहीं दिखता हो, कहीं हम भी ऐसे व्यक्तित्व के चक्कर में न पड़ जायें, कहीं ऐसे असंयमी, विषयासक्त भोगी के चक्कर में न पड़ जायें जिससे अकल्याण की संभावना ज्यादा बढ़ जाये। अपनी श्रद्धा को जीवंत करें जिससे हमारी चेतना जीवंत हो जाये।

''शांतिनाथ भगवान की जय''

भावभीनी भक्ति

एक बार प्रभु भक्ति का भाव बनाकर वह मेंढ़क राजा श्रेणिक के हाथी के पैर के नीचे दबकर मरने से देव हो गया। एक बार मुनि महाराज के आहार दान की अनुमोदना करने वाला वह अकृतपुण्य सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। एक बार मुनि महाराज के श्रीमुख से धर्मोद्बोधन सुनने से वह मृगसार नाम का हरिण स्वर्ग में जाकर पुनः च्युत हो बालि बना। एक बार के उपवास करने से वह दुर्गंधा आगे सुकौशल बनी जो अगले भव से मोक्ष प्राप्त करेंगे। एक बार मुनि महाराज की वैयावृत्ति करने मात्र से वह सुभग ग्वाला, सेठ सुदर्शन बना जो पटना से मोक्ष को प्राप्त हुआ।

बात ये नहीं है कि हमने क्रियायें कितनी कीं हैं हम अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिये, स्वयं को महान बताने के लिये क्वान्टिटी बढ़ाते चले जाते हैं किन्तु होता ये है कि क्वालिटी गिरती चली जाती है जबकि हमें क्वालिटी को बढ़ाना है। तुम्हारी झोली में जो कुछ भी है वह मूल्यवान् है कि निर्मूल्य। यदि तुमने 100 क्विन्टल मिट्टी इकट्ठी की तो कुछ इकट्ठा नहीं किया और यदि किसी ने 10 ग्राम का हीरा अपनी मुट्ठी में रखा तो वह हीरा हजारों टनों मिट्टी से ज्यादा अधिक है। हम मिट्टी, कंकड़, पत्थर, काँच के टुकड़े इकट्ठे करते चले जा रहे हैं, काँटें और बबूल के बीज इकट्ठे करते चले जा रहे हैं या यूँ कहें संक्षेप में हम कुल मिलाकर के दुःख की सामग्री एकत्रित करते चले जा रहे हैं और सुख की कामना करते जा रहे हैं। जितनी ज्यादा दुःख की सामग्री एकत्रित होगी, उतना ज्यादा दुःख मिलेगा। हमारी अनादि काल से ये मानसिकता बनी हुयी है कि हमारे पास जितनी ज्यादा सामग्री होगी हम उतने ज्यादा सुखी हो जायेंगे परन्तु पर पदार्थ में न कभी सुख है और न कभी भविष्य में हो सकेगा।

महानुभाव ! मिथ्यात्व से जिसकी बुद्धि ग्रसित है ऐसा व्यक्ति अपनी आत्मा में सुख शान्ति को, आत्म वैभव को खोजने का प्रयास नहीं कर सकता और जिसकी आत्मा में एक बार सम्यक्त्व का दिव्य प्रकाश हो गया है ऐसे व्यक्ति को संसार का कोई भी प्राणी अंधेरे में भटका नहीं सकता। अपनी चेतना के क्षितिज पर सम्यक्त्व के सूर्य का उदय करो, वह सम्यक्त्व का दिव्य प्रकाश ही तुम्हारी आत्मा में दिव्य आलोक को भरने वाला है। उसके सिवाय संसार के अन्य सभी प्रकाश तुम्हारी आत्मा के अंधकार को किंचित् भी दूर नहीं कर सकते। क्योंकि सैकड़ों, हजारों, लाखों लोगों को भोजन कराने पर भी तुम्हारी क्षुधा शान्त नहीं होगी और यदि चार ग्रास भी उदरस्थ कर लिये तो अपनी क्षुधा को शान्त कर सकते हो।

महानुभाव ! बिना आस्था, बिना श्रद्धा, बिना सम्यक्त्व, बिना रुचि-प्रतीति, बिना विश्वास के की गयी धर्म की क्रिया नियम से निष्फल होती है। जैसे दूध के डिब्बे के ऊपर चाहे कितनी ही शक्कर डाल दो वह मीठा नहीं होता, शर्त है कि वह दूध शक्कर को स्वीकार कर ले अपने हृदय में शक्कर को स्थान दे दे, वह अपने में उसे ऐसे घोल ले कि दूध और शक्कर अलग-अलग न रह पायें। जब तक दोनों अपना अस्तित्व दूर-दूर बनाये रखेंगे तब तक दूध मीठा नहीं होगा। ऐसे ही जब तक हम भी धर्म को अपनी आत्मा में नहीं घोलते हैं, वह हृदय पर स्थापित नहीं होता है, जब तक हमारी आस्था हमारे आत्मा के प्रदेशों से पैदा नहीं होती है तब तक धर्म की कोई भी क्रिया हमें सुख शांति का अनुभव नहीं करा सकती है। आवश्यकता इसी बात की है कि हम अपनी चेतना के प्रत्येक प्रदेश में, अपने प्राणों में श्रद्धा को घोल दें। हमने तो पुष्पों पर पानी छिड़का है, जड़ों में नहीं डाला, आवश्यकता है नींव को मजबूत करने की।

कई बार लोग नियम लेते हैं-100-150 माला फेरूँगा। ये करूँगा वो करूँगा-कई बार मेरे मन में विचार आता है, जो व्यक्ति 200 माला

फेरते हैं क्या उसे ज्यादा पुण्य मिलेगा। ऐसा भी तो होता है कि एक माला फेरने वाले को भी समीचीन पुण्य की प्राप्ति होती है। कई बार ऐसा भी होता है जो भगवान की जिंदगी भर पूजा करता रहा, व्याकरणाचार्य बनकर शब्दों की शुद्धि करता रहा, मधुर कंठ से जोर-जोर से पूजा पढ़ता रहा दूसरों को रिझाने के लिये तो उसको समीचीन फल की प्राप्ति न हुई हो। इसके विपरीत सामने वाले व्यक्ति ने केवल एक बार जीवन में भगवान की देहरी पर माथा टेका था उसे फल की प्राप्ति हो गई हो उस धनदत्त ग्वाले की तरह।

धनदत्त नाम का ग्वाला गाय चराता था। एक बार अपने दोस्तों के साथ गेंद खेल रहा था, खेलते-खेलते गेंद तालाब के अंदर चली गयी। वह धनदत्त ग्वाला गेंद निकालने के लिये तालाब में गया। सभी चारवाहों ने मना कर दिया हम नहीं जायेंगे, इस तालाब में एक देव रहता है वह हमें परेशान करेगा। तब धनदत्त तालाब में कूद गया और गेंद निकाल लाया। उस तालाब में बहुत सारे कमल के पुष्प खिल रहे थे वह ग्वाला एक पुष्प तोड़ लाया, जैसे ही फूल तोड़ा देव ने उसे पकड़ लिया और कहा-इस तालाब की मैं रक्षा करता हूँ तुमने फूल कैसे तोड़ा ? ग्वाला घबरा गया। बोला मुझे क्षमा कर दीजिये देव बोला-क्षमा तो कर सकता हूँ किन्तु उसका बस एक उपाय है। क्या ? शर्त यह है कि इस पुष्प को जो तुमने तोड़ा है उसे सबसे बड़े व्यक्ति के चरणों में चढ़ा देना तो मैं तुम्हें क्षमा कर दूँगा अगर नहीं चढ़ाया, अपने काम में ले लिया तो तुझे जान से मार दूँगा। बेचारा ध नदत्त ग्वाला घबरा गया बोला ठीक है।

शाम को अपने घर पहुँचा, सेठ जी (अपने मालिक) के चरणों में पुष्प रखने लगा। सेठ जी ने पूछा क्या आज कोई खुशी का दिन है, क्या तुम्हारा जन्मदिन है आज इतना खुश क्यों हो रहा है? वह बोला खुश इसलिये हो रहा हूँ कि आज मेरा दूसरा जन्म हुआ है,

अन्यथा वह देव मुझे मार डालता। यह कमल पुष्प मैंने तोड़ लिया, तो उस देव ने कहा-संसार के सबसे बड़े प्राणी के पास चढ़ाना और मेरी दृष्टि में आप जो कि मेरे मालिक हैं सबसे बड़े हैं इसलिये आपके चरणों में लाया हूँ। वह सेठ कहता है तू तो निरा मूर्ख है। मैं सबसे बड़ा व्यक्ति कैसे हो सकता हूँ, मुझ जैसे और बड़े-बड़े सेठ इस दुनिया में भरे पड़े हैं और उनसे भी बड़े मुनि महाराज हुआ करते हैं, जिनके चरणों में सेठ लोग, राजा लोग नमस्कार करते हैं इसलिये इस कमल के फूल को किसी मुनि महाराज के चरणों में चढ़ा दो। सेठ और धनदत्त ग्वाला चल देते हैं मुनि महाराज के चरणों में और वहाँ पर पुष्प चढ़ाने लगते हैं यह कहकर कि देव ने कहा है इसे सबसे बड़े व्यक्ति के पास चढ़ाना अन्यथा वह मुझे मार देगा। मुनि महाराज ने कहा मैं सबसे बड़ा हूँ यह तुम्हारा भ्रम है मैं सबसे बड़ा नहीं हूँ, सबसे बड़े तो अरिहंत और सिद्ध भगवान होते हैं। सिद्ध भगवान सिद्धालय में विराजमान हैं, तुम वहाँ जा नहीं सकते हो, अरिहंत भगवान समवशरण में विराजमान होते हैं, वह भी यहाँ अभी हैं नहीं, किन्तु समीप में ही अरिहंत भगवान का मंदिर है वहाँ जाकर तीन लोक के नाथ के सामने तुम पुष्प चढ़ाओ। वह सेठ, ग्वाला और मुनिमहाराज तीनों मंदिर पहुँचते हैं। ग्वाला उत्साह में सीधे ही मंदिर पहुँच गया, उसने न पैर धोये न हाथ, पुष्प चढ़ाया (सेठ ने व मुनिमहाराज ने समझाया था कि मंदिर में कोई भी अशुद्ध द्रव्य लेकर या बिना हाथ पैर धोये नहीं जाते।)

उस धनदत्त ग्वाले ने जीवन में कभी पूजा नहीं की, आहार नहीं दिया, तीर्थयात्रा नहीं की, केवल एक बार अपनी अंतरंग की श्रद्धा से, तीन लोक के नाथ आपसे बड़ा कोई नहीं है इस भावना के साथ कमल पुष्प को समर्पित करता हूँ-केवल इतना कहा था। जो धनदत्त ग्वाला अपना नाम भी लिखना नहीं जानता था, वह मरण करके

करकण्डु नाम का राजा हुआ। जन्म से उसके हाथ में खुजली थी इसलिये उसका नाम रखा गया करकण्डु। (कर अर्थात् हाथ और कण्डु अर्थात् खाज)

तो महानुभाव ! वह ग्वाला जिसने एक बार भी भावों से पूजन की तो वह करकण्डु राजा हुआ अनेक देशों को जीता, नीलगिरि पर्वत पर भगवान पार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया और पुनः दीक्षा लेकर सर्वार्थसिद्धि का देव हुआ।

महानुभाव ! हम कई बार अपनी डायरी में नोट करते रहते हैं मैंने इतने उपवास कर लिये, इतनी माला कर लीं, इतनी यात्रा कर लीं, सबको बताते रहते हैं। ज्यों-ज्यों लोगों को बताते हैं त्यों-त्यों अहंकार की पुष्टि होती है उसी में आनंद आता है, आत्मा में भले ही आनंद की अनुभूति हो पाये या न हो पाये। प्रायःकर हम दिखाना चाहते हैं कि हम कितने श्रेष्ठ हैं। अतः गिनती करना बंद करें, पाप करते वक्त हम नहीं गिनते, कितनी बार घास पर पैर पड़ा, कितनी बार बस से यात्रा करते समय संज्ञी जीवों की हिंसा की। ये सब बातें तो कभी याद ही नहीं रहतीं। यदि कुछ याद ही रखना है नोट ही करना है तो अपनी डायरी पर लिखो मैंने उसे धोखा दिया था, उसे ठगा था मैंने उसके प्रति बुरे भाव किये थे, यदि ऐसा करोगे तो जीवन में एक दिन ऐसा आयेगा कि तुम पापों से मुक्त हो जाओगे।

महानुभाव ! कोई भी क्रिया करें अंतरंग से करें। जो क्रिया शुद्ध भाव से की जाती है उस क्रिया को तीन लोक में कोई नष्ट नहीं कर सकता, किन्तु जिस क्रिया में तुम्हारा मन नहीं लग रहा सिर्फ शरीर से की जा रही है तो वह किसी नाटक से कम नहीं है। वह तो बहुरूपिया की तरह से है जो कि रूप बनाकर दूसरों को धोखा देने का कार्य करता है। उससे जीवन की सही सार्थकता नहीं हो सकती। चाहे 24 घंटे में णमोकार मंत्र एक बार ही पढ़ो पूरा न पढ़ सको तो

''ॐ णमो अरिहंताणं'' मात्र पढ़ो, किन्तु जब पढ़ो तो उस ॐ में तुम्हारा मन भी लगना चाहिये, वचन भी लगना चाहिये और शरीर भी तन्मय हो जाना चाहिये। चेतना में एक क्षण के लिये ॐ की अनुभूति हो जाना चाहिये कि संसार में वह ॐ है जो पंचपरमेष्ठी से मिलकर बना है, जिसमें तीनों लोकों की शक्ति निहित है, पूरे द्वादशांग का सार है, समस्त देवी देवताओं के लिये पूज्य है, उसे एक बार भी पूर्ण मनोयोग से उच्चारण किया है तो मैं दावे से कहता हूँ एक बार वह उच्चारण तुम्हारी 1 करोड़ मालाओं से भी ज्यादा हो सकता है क्योंकि अहंकार नहीं आयेगा और यदि माला भी फेर ली तो बिना अहंकार के रह नहीं पाओगे।

महानुभाव ! प्रार्थना वह कहलाती है जिसमें प्रकृष्ट वस्तु को प्रकट करने की अर्थना होती है और जिसमें निकृष्ट वस्तु माँगी जाती है वह याचना कहलाती है, भीख कहलाती है। यदि तुमने भगवान के सामने माथा टेक कर माँग लिया कि मुझे यह चाहिये तो यह प्रार्थना नहीं तुम्हारी याचना है। भगवान के चरणों में जब भी पहुँचो तो पुजारी बनकर पहुँचो, भिखारी विकारी नहीं। मंदिर में यदि भिखारी, विकारी व्यापारी बनकर जाओगे तो कुछ भी सम्यक् रूप में प्राप्त न कर पाओगे, व्यापारी बनकर गये तो चार चीजें कमा लोगे, झोली लेकर गये तो हो सकता है मुट्ठी भर वहाँ से भी मिल जाये और विकारी बनकर जाओगे तो संसार में जैसे संग्रह करते हो वहाँ से भी पाप का संग्रह करोगे, सच्चे पुजारी बनकर जाओगे तो जीवन में बार-बार माथा रगड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

महानुभाव ! भक्ति का प्रारंभ तो अपनी अंतर आत्मा से होता है, हमने समझ लिया है कि भक्ति शरीर से, जिह्वा से, कंठ से या मन से होती है ये तो अल्पज्ञों का कहना है। भक्ति की वीणा यदि है तो वह चेतना है। चेतना की झंकार ही भक्ति है। जब तक चेतना नहीं

झंकार रही है, केवल बाहर के कपड़े को, बक्से को झाड़ते रहो उससे वीणा की झंकार नहीं निकलती। यह कमरा तो शरीर है, इसकी दीवारें ठोकने से वीणा की आवाज नहीं निकलेगी, यह डिब्बा तो माना वचन हो इसे बजाने से भी वीणा की आवाज नहीं निकलेगी और वीणा पर चद्दर कपड़ा माना कि मन की परत है वहाँ तक भी पहुँच गये तो भी आवाज न निकलेगी। वीणा तो वास्तव में हमारी चेतना है और जब हम चेतना रूपी वीणा को बजायेंगे पूरे उपयोग से बजायेंगे तब तुम्हें वह आवाज 100 प्रतिशत सुनायी देगी।

महानुभाव ! बस यही आशय (संकेत) है कि आपके चित्त की भूमि पर ऐसी बारिश हो जिससे चित्त पर जमी काई दूर हो जाये। आप लोग अपनी क्रियाओं को बढ़ावा न दें अपने भावों में बढ़ावा दें। द्रव्यक्रिया प्रायः करके अहंकार के पोषण का कारण बनती है इसलिये भावों पर जोर दें। हाँ यह बात भी सही है बिना द्रव्य के भाव बनते नहीं है किन्तु बिना भावों के की गयी क्रिया सम्यक् फल को देने वाली नहीं होती है। अतः धर्मानुरागी भव्य बन्धुओं ! अपने अंतरंग के विशुद्ध भावों से अपनी क्रिया को प्रारंभ करें जिससे उसका आपको सम्यक् फल प्राप्त हो इन्हीं सद्भावनाओं के साथ धर्मवृद्धि आशीर्वाद

''शांतिनाथ भगवान की जय''

सम्यक् श्रद्धा

संसार की कोई भी शक्ति कोई भगवान व परमात्मा हमारे पाप को पुण्य में और पुण्य को पाप में नहीं बदल सकते। संसार की कोई शक्ति हमें पुरस्कार नहीं दे सकती, हम ही अपने पुरुषार्थ के बल से अपने पुण्य को पाप में और पाप को पुण्य में बदल सकते हैं। हम ही स्वयं अपने पुरुषार्थ के बल से स्वर्ग और मोक्ष का उपाय ग्रहण कर सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही क्रिया कलापों के माध्यम से नरक व पशुगति का सृजन करता है, प्रत्येक व्यक्ति अपने ही कर्म के माध्यम से सुख और दु:ख का उपाय खोजता है एवं सुख-दु:ख की अनुभूति करता है। महानुभाव ! क्रिया करना बहुत आसान है किन्तु वह क्रिया सम्यक् होते हुये भी, सही और अच्छी दिखाई देते हुये भी कई बार सम्यक् फल देने में असमर्थ होती है क्योंकि उस क्रिया का आधार क्या है, यदि उस क्रिया का आधार सम्यक् है तब नि:संदेह सम्यक्पना प्राप्त होगा। यदि क्रिया का आधार मिथ्यात्व है तो समग्र क्रिया मिथ्यात्व रूप ही फल देगी।

आप कहेंगे ऐसा कैसे हो सकता है? मैं एक छोटी सी बात आपको बताऊँ-आपने देखा होगा कुम्भकार मटके बनाने के बाद जब मटके रखता है तो पहले नीचे एक उल्टा मटका रख देता है उस उल्टे मटके के ऊपर दूसरा, तीसरा आदि मटके रखता चला जाता है बीस मटके तक भी लाइन लगा सकता है, किन्तु यदि वह कुम्भकार जो नीचे उल्टा मटका रखा है उसके ऊपर सीधा मटका कितना भी प्रयास करे तो वह रख नहीं सकता। जिस व्यक्ति की बुद्धि प्रांरभ से ही मिथ्यात्व से ग्रसित है, जिसकी धारणा विपरीत है, ऐसे व्यक्ति को सम्यक् फल की प्राप्ति नहीं हो सकती।

आचार्य समंतभद्र स्वामी जिनके बारे में कहा जाता है कि वे भावी तीर्थंकर होंगे उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि यदि सम्यक्त्व

के आठ अंगों में से एक भी अंग कम है तो वह सम्यग्दर्शन संसार की संतति को कम नहीं कर सकता, जन्म-मरण की श्रृंखला का नाश नहीं कर सकता। आठ के आठ अंग पूरे हैं तभी वह संसार की श्रृंखला को नष्ट करने में समर्थ होता है।

नांगहीनं मलं छेत्तुं दर्शनं जन्म सन्ततिम्।
न हि मंत्रोक्षरोन्यूनो निहन्ति विष वेदनाम्॥

उन्होंने उदाहरण भी दिया है जैसे कोई मंत्र बिच्छु के जहर को दूर करने के लिये प्रयोग किया जाता है, यदि उस मंत्र में एक भी अक्षर कम हो तो वह बिच्छु आदि के जहर को दूर नहीं कर सकता, उसी प्रकार जब तक हमारी धारणा, हमारी मान्यता हमारी सोच समझ सही नहीं है हमने मिथ्यात्व को ही सम्यक्त्व मानकर पकड़ लिया है तब तक समग्र फल प्राप्त नहीं कर सकते। हाँ यदि कुम्भकार नीचे वाले मटके को सीधा रख दे तो पुनः उसके ऊपर कई सीधे मटके रखे जा सकते हैं। जैसे कई बार आपने देखा होगा पानी भर-भर कर लाने वालीं पनहारिन अपने सिर पर 1-2-4 मटके भरकर पानी लाती हैं, देखा होगा नृत्य दिखाने वाली बालायें आदि अपने सिर पर 7-7 मटके सीधे रखती हैं किन्तु ऐसा नहीं हो सकता कि नीचे वाला मटका उल्टा हो और ऊपर-ऊपर के मटके सीधे रखे जा सकें, यह असंभव है।

महानुभाव ! इसी प्रकार मूल यदि है तो हमारी श्रद्धा है, आस्था है हम सबसे पहले धर्म के मर्म को समझें, धर्म के मूल को पहचानें। जैसे वृक्ष का मूल जड़ होती है जड़ सुरक्षित हो तो वृक्ष सुरक्षित है ऐसे ही कोई संयमी यदि अपने चारित्र में दोष लगाता है अथवा संयम से भ्रष्ट भी हो जाता है और यदि सम्यक्त्व से च्युत नहीं हुआ तो पुनः वह संयमी संयम को स्वीकार करके मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी बारसाणुवेक्खा में कहते हैं-

दंसण भट्टा भट्टा, दंसण भट्टस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरिय भट्टा, दंसण भट्टा ण सिज्झंति॥

दर्शन से भ्रष्ट ही वास्तव में भ्रष्ट है सम्यक्चारित्र से भ्रष्ट तो पुनः चारित्र को प्राप्त कर सकता है, सम्यक् चारित्र स्वर्ण कलश की तरह से है उसे कितने ही बार तोड़कर पुनः बनाया जा सकता है सोने का कलश हजार बार तोड़कर भी ज्यों का त्यों बनाया जा सकता है उसमें कहीं भी कोई अंतर आने वाला नहीं किन्तु सम्यक्दर्शन आस्था वह मिट्टी के कलश की तरह से है एक बार धक्का लगते ही टूट जाता है उसे पुनः जोड़ना बड़ा कठिन होता है।

महानुभाव ! सबसे पहले हमें अपनी श्रद्धा को परिमार्जित करना है, अपनी श्रद्धा को सुदृढ़ व निर्मल बनाना है, श्रद्धा ज्यों-ज्यों निर्मल होती चली जायेगी त्यों-त्यों आपके जीवन में समय की ओर कदम गतिशील होते चले जायेंगे, श्रद्धा ज्यों-ज्यों निर्मल होगी आपकी प्यास सम्यग्ज्ञान के अमृत को पीने के लिये बढ़ती चली जायेगी और सम्यग्ज्ञानामृत की प्यास जब बढ़ेगी तो आपके कर्मों की गति स्वतः ही सुधरती चली जायेगी।

महानुभाव ! जिसकी धारणा प्रारम्भ से ही उल्टी हो गयी है उसे पुनः कुछ भी समझा पाना कठिन है पूज्य आचार्य श्री अकलंकदेव स्वामी तत्त्वार्थ राजवार्तिक में लिखते हैं-दूसरे व्यक्ति के अभिप्राय की निवृत्ति करना अशक्य है जो व्यक्ति नमक को ही शक्कर मान करके बैठ गया, अब कोई उपाय नहीं है कि उसे नमक और शक्कर का सही बोध कराया जा सके उसे क्या कहा जाये।

एक व्यक्ति तालाब के किनारे खड़ा हुआ था, उसमें दो मछलियाँ आपस में चर्चा कर रहीं थीं-कहने लगीं-देखो सामने आदमी खड़ा है, क्या तुम आदमी का स्वरूप जानती हो? दूसरी मछली बोली हाँ

जानती हूँ न। जिसके नीचे सबसे पहले सिर होता है फिर गर्दन होती है पुनः वक्षस्थल, पेट, पुनः कमर, पुनः जंघा और सबसे ऊपर पैर होते हैं। दूसरी मछली ने कहा नहीं बहन ऐसा नहीं होता ये तुम असत्य कह रही हो तुमने यह तो उल्टा कर दिया, सबसे नीचे पैर होते हैं फिर घुटने, फिर जंघा फिर कमर, पेट, वक्षस्थल, गर्दन पुनः सबसे ऊपर सिर होता है और दोनों साइड में हाथ होते हैं यह आदमी का स्वरूप है। दोनों मछलियों में बहस हो गयी वह अपनी-अपनी बात को मनवाना चाहती थीं-सामने ही वह आदमी खड़ा था, उन्होंने सोचा-हाथ कंगन को आरसी क्या, पढ़े-लिखे को फारसी क्या। चलो बाहर निकलकर इसी व्यक्ति से पूछ लेते हैं। पहली मछली ने कहा देख ये आदमी इसके पैर नीचे सिर ऊपर है तू सब उल्टा कह रही थी। दूसरी मछली बोली नहीं मैं सही कह रही थी, ये व्यक्ति हमारी बात सुनकर उल्टा खड़ा हो गया है, हमें दिखाने के लिये ये ऐसा खड़ा हो गया है-उस मछली को समझाना बड़ा मुश्किल है जो कह रही है कि यह आदमी उल्टा खड़ा हो गया है, उसकी मान्यता ऐसी बन चुकी है, उसे कौन समझाये, इसी प्रकार दूसरी बात समझें।

दो व्यक्ति चौपाल पर बैठे चर्चा कर रहे थे, चर्चा का विषय था कि सूर्य का उदय पूर्व दिशा से होता है। दूसरा व्यक्ति बोला-सूर्य का उदय पश्चिम से होता है। पहला बोला भाई तुम भूल रहे हो सूर्य का उदय नहीं अस्त होता है पश्चिम में। दूसरा व्यक्ति यह मानने को तैयार ही नहीं, वह बोला मैंने देखा है, मैं क्या मूर्ख हूँ तुम ही बहुत बड़े विद्वान् बन रहे हो। पहला बोला भाई ! लगता है तुम कहीं भूल रहे हो। उसने बहुत समझाने का प्रयास किया किन्तु वह नहीं माना। पहला वाला पुनः बोला ठीक है तो तुम अपनी बात को साबित करके दिखाओ? यदि सूर्य का उदय पश्चिम से होता है तो मैं अपनी जमीन, जायदाद, सम्पत्ति आदि सब कुछ तेरे नाम कर दूँगा, जो कपड़े मैं पहने

हूँ उन कपड़ों व अपनी पत्नी बच्चों के साथ घर को छोड़ दूँगा। और यदि सूर्य का उदय पूर्व से हुआ तो याद रखना तुझे भी मैं घर से बाहर निकाल दूँगा, तेरी सम्पत्ति, मकान दुकान, जायदाद सब मेरे नाम हो जायेगी।

दोनों ने एक कागज पर हस्ताक्षर किये और दोनों खुशी-खुशी अपने-अपने स्थान पर लौट गये, दोनों मन में सोच रहे हैं कि मैं जरूर मालामाल हो जाऊँगा। दोनों ने आकर अपनी-अपनी बात अपने जीवन साथी से कही कि आज की रात्रि बस बीच में है कल से हम मालामाल हो जायेंगे। पत्नियाँ बोलीं क्या जुआ खेल कर आये हो-बोले नहीं, हमने शर्त लगायी है ? वह जो कह रहा था सूर्य का उदय पश्चिम से होता है, उसकी पत्नी बोली-अरे ! ये क्या कह रहे हो सूर्य का उदय तो पूरब से ही होता है, पश्चिम से नहीं। वह बोला लगता है तू उससे मिलकर के आयी है, उसका पक्ष क्यों लेती है मेरा क्यों नहीं ले रही, सत्य बात कह कि सूर्य का उदय पश्चिम से होता है और गर नहीं बोली तो देख सामने यह डंडा देखा है न !

पत्नी ने कहा मुझको तो तुम लाठी से धमकी दे सकते हो किन्तु जो बात सत्य है उसे कैसे न मानोगे। चाहे पंचायत बिठा लो वहाँ सभी सत्य ही कहेंगे सूर्य का अस्त तो पश्चिम में होता है किन्तु उदय पूरब में ही। वह बोला पूरी दुनिया कहे-चाहे भगवान आकर कहने लगे, किन्तु मैं तब भी न मानूँ। उसके बाप में दम हो तो ले ले मेरी सम्पत्ति, मैं तो यही कहूँगा कि सूर्य का उदय पश्चिम में होता है। बता क्या आकाश में कहीं लिखा है कि ये पूरब है ये पश्चिम है जिसे तू पूरब कहता है मैं उसे पश्चिम कहता हूँ, यही मेरी धारणा है।

कहने का आशय ये है जिस व्यक्ति ने अपने मन में पहले से गलत धारणा बना ली हो उसे दुनिया का कोई व्यक्ति समझा नहीं सकता। भगवान भी आकर उसे समझा नहीं सकता, जब तक वह खुद समझना न चाहे।

महानुभाव ! मैं केवल आपसे इतना कहना चाह रहा हूँ कि एक बार और थोड़ा सा अवलोकन कर लें, अपनी मान्यताओं और धारणाओं का, एक बार और थोड़ा सा निहार लें अपने अंदर में, एक बार थोड़ी सी परीक्षा ले लें अपने आपकी, एक बार और थोड़ा सा विचार कर लें अपने क्रिया कलापों के ऊपर, हो सकता है कि अब, कि बार तुम्हें अपने अंदर में बदला-बदला सा दिखाई दे, हो सकता है कुछ परिवर्तन लगे, हो सकता है आपको लगे कि ये तो मेरा अन्तरंग है ही नहीं, मुझे तो ऐसा चाहिये ही नहीं।

महानुभाव ! किन्तु यह काम हम कर नहीं पाते, कारण क्या है कि अपने अंतरंग में झांकना, देखना यह बड़ा कठिन कार्य है। ये दो बाहर की आँखें बाहर का दृश्य देखती हैं, इनमें अंदर का दृश्य देखने की शक्ति नहीं है और जब ये बाहर की आँखें अंदर का दृश्य नहीं देख सकतीं तो अंदर की आँखों से बाहर का दृश्य नहीं देख सकते। व्यवहार में कहा जाता है कि अन्तःदृष्टा, सम्यग्दृष्टा, समदर्शी, प्रभु परमात्मा तीनों लोकों तीनों कालों की सब वस्तुओं को एक साथ जानते देखते हैं किन्तु जो अन्तर्दृष्टा वास्तव में अपने ही आत्मा के निजी वैभव को, चेतना को जानते देखते हैं, भोगते हैं उन्हें क्या पड़ी बाहर की वस्तुओं को जानने देखने की। वे कुछ नहीं जानते देखते ये सब तो व्यवहार की भाषा है। जो अपने आत्मा के समग्र वैभव को जान लेता है देख लेता है, उसकी आत्मा इतनी निर्मल हो जाती है कि संसार का प्रत्येक परमाणु व पर्याय उसकी आत्मा में झलकने लगती है, वह बुद्धि पूर्वक नहीं स्वतः ही झलकती है।

महानुभाव ! हम भी अपनी आत्मा को साफ करने, रगड़ने व मांजने का सम्यक् पुरुषार्थ करें। अभी तक हमारा पुरुषार्थ सामने वाले पर चलता रहा, हम सामने वाले को सुधारते रहे, सुख शांति के सूत्र जो हमने सुने, पढ़े, अनुभव में लाये, दूसरों पर ही एक्सपेरिमेंट करते

रहे किन्तु कभी स्वयं अपने ऊपर आरोपित नहीं किया। अब एक बार अपनी श्रद्धा को देख लो, क्योंकि कई बार हमारी श्रद्धा पीपल के पत्ते की तरह से डोलने लगती है, थोड़ी सी बात पर हमारा मन डोल जाता है, फिर हमारे सामने वीतरागी भगवान दिखाई नहीं देते संसार के अन्य देवी देवता आदि कोई भी जिसके माध्यम से कार्य सिद्ध हो जावें, वे ही फिर सच्चे देव लगने लगते हैं। फिर तो आत्महित की शास्त्रों की कोई बात अच्छी नहीं लगती।

वैराग्य, संयम, सदाचार भक्ति, पूजा, अर्चना की बातें गले नहीं उतरतीं, वे सब बातें बाहर-बाहर दिखाई देती हैं। लगता है जो सुख राग में है वह त्याग में कहाँ, वैराग्य में कहाँ, जो सुख भोग में है योग में कहाँ ? जो सुख वासना में है उपासना में कहाँ? जो सुख मौजमस्ती में है वह संयम की साधना में नहीं। सबकी परिभाषायें अलग-अलग हैं। जब तक व्यक्ति उस मार्ग से नहीं गुजरता है, तब तक उसे उस मार्ग का अनुभव प्राप्त नहीं हो सकता। सुनी बातें तो कह देते हैं किन्तु धूप क्या होती है, सर्दी क्या है, काँटे की चुभन का कष्ट क्या है ये सब बात वही व्यक्ति जान सकता है जो उस रास्ते से गुजरा हो। जिसे जीवन में कभी बुखार नहीं आया, बुखार में क्या बैचेनी होती है वह क्या बता पायेगा चाहे कितनी ही पुस्तकें पढ़ ले।

जब व्यक्ति श्रद्धा से भर जाता है तो उसके जीवन में स्वत: ही समर्पण आता है और श्रद्धा में दृढ़ता आती है ज्ञान से। व्यक्ति का ज्यों-ज्यों ज्ञान गहरा होता जाता है त्यों-त्यों श्रद्धा गहरी होती जाती है और जब श्रद्धा गहरी होती चली जाती है तो भक्ति नियम से प्रगट होती ही होती है। जब श्रद्धा चरम सीमा पर पहुँचती है तो नि:संदेह उसमें संयम का बीजारोपण हो जाता है, संयम का अंकुर दिखायी देने लगता है। बिना श्रद्धा के संयम तो अभव्य भी धारण कर सकता है जैसा कि पूर्व में आ. कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा-

''धम्मं भोग णिमित्तं''–वह अभव्य मिथ्यादृष्टि जीव धर्म भोगों के निमित्त से करता है, वह धर्म व्यापार मानकर करता है। वह सोचता है कि ऐसा करने से, जाप मंत्र तंत्र आदि से मुझे धन की प्राप्ति हो जायेगी, यह भी उसका व्यापार है कि यदि सौ माला फेरने से 100 रु. का लाभ होता है तो 100 माला फेर लेता हूँ। यदि यही सब कामनायें कल्पनायें हैं तो यही समझना चाहिए कि अभी तक हमने वास्तविक धर्म को नहीं समझा। धर्म को खिलवाड़ की वस्तु मान लिया, कल्याण की नहीं।

यह धर्म तो ऐसा रसायन है जिसके साथ मिलकर आत्मा परमात्मा की दशा को प्राप्त हो जाये। किन्तु हमने अभी इस रसायन को सही रूप में जाना नहीं इसका नाम तो सुना है किन्तु धर्म को वास्तव में पहचान नहीं पाये। जैसे मानचित्र में बनी हुयी नदी में हम डूब करके नहा नहीं सकते, उसमें से अंजुली भरकर पानी पी नहीं सकते, जैसे मानचित्र पर बने घोड़े पर सवारी नहीं कर सकते, उस पर बनी गाय का दूध निकालकर पी नहीं सकते ऐसे ही पुस्तकों में, शास्त्रों में, जिनवाणी में लिखे शब्दों से हम अपनी आत्मा का कल्याण नहीं कर सकते ये शब्द तो कागजी घोड़े हैं ये हमें कहीं नहीं पहुँचा पायेंगे। जब तक वे शब्द हमारी आत्मा में निष्पन्न न हो जायें, जब तक हमारी आत्मा का अनुभव और शब्द दोनों एक मेक न हो जायें तब तक हम धर्म का स्वाद नहीं ले सकते।

हम संतुष्ट हो जाते हैं शब्द रूपी कागजी घोड़ों से, हम संतुष्ट हो जाते हैं पुस्तकों के शब्दों से, हम संतुष्ट हो जाते हैं अपने आत्मा के वैभव को सुनकर के इसीलिये प्रायःकर के सभी व्यक्तियों को (आध्यात्मिक) आत्मा की चर्चा बहुत अच्छी लगती है, क्योंकि आध्यात्मिक चर्चा का आशय है आत्मा के वैभव का बखान ! अरे–आत्मा तो शुद्ध है, बुद्ध है, नित्य है, निरंजन है, अविनाशी है,

आत्मा में तो कोई दोष है ही नहीं, ये तो शरीर का पर्याय का दोष है, इस प्रकार की बातों में व्यक्ति उलझ जाता है और अपने कर्तव्य से, व्यवहार की क्रियाओं से च्युत हो जाता है क्योंकि उसे अधूरा ज्ञान है। अभी व्यवहार का ज्ञान ही नहीं निश्चय में पहुँचने की वह आकांक्षा बना लेता है। व्यवहार छोड़ निश्चय को प्राप्त करना चाहता है वह सीढ़ियों को छोड़कर के छत पर पैर रखना चाहता है।

महानुभाव ! श्रद्धा का आशय है जो सम्यक् मार्ग का दिग्दर्शन कराने वाली हो, सम्यक् श्रद्धा का आशय है जो उस विधि से परिपूर्ण ज्ञान कराये, थोड़ी भी चूक कर गये तो टॉप पर न पहुँच कर बॉटम में पहुँच जाओगे इसीलिये चूकना नहीं है। व्यक्ति कई बार आधी बात जिनवाणी की और आधी बात अपने मन की मानकर कार्य करता है। आधी बात गुरुओं की सुनता है, आधी बात अपने मन की लगाता है। जहाँ पर आधी अपनी व आधी भगवान की मानता है, व्यक्ति वहीं फिसल जाता है दो नावों में पैर रखकर आज तक कोई पार हुआ है क्या? ऐसा व्यक्ति किसी भी किनारे पर न पहुँचकर नि:संदेह डूब जाता है, इसलिये सबसे पहली आवश्यकता है कि हम अपनी श्रद्धा को खूब अच्छी तरह रगड़-रगड़ कर साफ कर लें। मैं अभी भी पुन: आपसे कह देता हूँ कि अभी आपको अपने चित्त की भूमि में कोई भी बीज बोने की आवश्यकता नहीं है अभी अपनी चित्त की चादर को रंगने की जरूरत नहीं है अभी अपने चित्त की चादर की गंदगी को निकालने की जरूरत है। अभी इसे धर्म के सर्फ में डालकर फूल जाने दो उसके बाद में गुरु की फटकार सहने दो, जब कपड़े को पीटा जायेगा तो उसमें विद्यमान वह मैल निकल जायेगा।

महानुभाव ! अभी खेत में बीज डालने की आवश्यकता नहीं अभी खेत की जुताई करना जरूरी है इसमें पड़े कंकड़-पत्थर को निकालकर के अलग करना चाहिये, तब बीज डालने की सोचना।

यदि झाड़ झंकड़, कंकड़ पत्थर के रहते हुये बीज डाल दोगे तो वह बीज उभर करके तुम्हारे घर पहुँच नहीं पायेगा इसीलिये चित्त की भूमि को उर्वरा बनाने की आवश्यकता है। अपने चित्त पर काले कुसंस्कारों की छाया पड़ी है उसे पहले दूर करने की आवश्यकता है तब कहीं सुसंस्कारों का दिव्य प्रकाश हो सकेगा।

एक बार एक जगह मीटिंग हुयी कि यहाँ एक धर्मशाला होनी चाहिए, किन्तु स्थान तो है नहीं, कुछ लोगों ने सलाह दी कि जो पुरानी धर्मशाला है उसे तोड़कर बना ली जाये। तो दूसरे पक्ष का व्यक्ति बोला नहीं धर्मशाला चाहे कहीं बनाओ, यदि किसी ने उस पुरानी वाली को छूआ तो हम उसके हाथ पैर तोड़ देंगे। पुनः प्रबुद्ध वर्ग से सम्पर्क हुआ, पुनः मीटिंग हुयी। कहा ऐसा करते हैं इसी के ऊपर दूसरी धर्मशाला बनवा लेते हैं। प्रबुद्ध वर्ग ने कहा भईया, कोई फायदा नहीं है। जो पहले स्वयं ऐसी टूटी-फूटी हो वह नये का वजन नहीं झेल पायेगी। इसे तोड़कर बनाना उचित होगा किन्तु दूसरे पक्ष का व्यक्ति मानने को तैयार नहीं। अन्ततोगत्वा यह हुआ कि धर्मशाला का निर्माण नहीं हुआ। यह बात किसी ग्राम की हो या न हो मैं नहीं जानता किन्तु कई बार जब कोई त्यागी, व्रती, संयमी जन आपके ग्राम में आते हैं और कहते हैं कि छोटे से छोटा नियम लेकर आप लोग अपने जीवन में धर्म का आयतन खड़ा करें तो हम लोग उसे नहीं मानते, अपनी पुरानी धारणा मान्यताओं को न छोड़कर उस धर्म को ऊपर से ओढ़ने का प्रयास करते हैं। हम धर्म को अंदर से पैदा करने का पुरुषार्थ नहीं करते धर्म को चद्दर मान कर ओढ़ लेते हैं और मैं कई बार कहता हूँ-राम बनने के लिये राम नाम की चदरिया नहीं ओढ़ी जाती।

''राम बनने के लिये राम की चदरिया नहीं, नजरिया चाहिये॥''

महानुभाव ! ऊपर से धर्म करके हम सबकी दृष्टि में धार्मिक बनना चाहते हैं। कोई व्यक्ति हमसे अधर्मी पापी नहीं कह दे इस

बचाव के लिये हम धर्म की क्रियाओं को ओढ़ लेते हैं और सामने वाले से सर्टिफिकेट ले लेते हैं। किन्तु सत्यता यह है कि हमारी आत्मा में धर्म प्ररूपित नहीं हो पाता, यदि तुम्हारी आत्मा में धर्म है, तो वह कहीं भी जायेगी तो अधर्म कर न पायेगी, तुम्हारी आत्मा में यदि धर्म हो तो वह धर्म केवल मंदिर में ही नहीं रहेगा, वह तुम्हारे घर, दुकान सब जगह रहेगा। तुम जानते हो झूठ बोलना पाप है तो तुम मंदिर में क्या घर, दुकान कहीं पर भी झूठ नहीं बोल पाओगे। आत्मा में जब धर्म प्रगट होता है तो वह सब जगह होता है, किन्तु होता यह है कि हम भगवान के सामने कुछ होते हैं और बाद में बाहर जाकर हिंसादि करने में नहीं चूकते। कहने का आशय यह है कि यदि धर्म का प्रादुर्भाव हो गया है तो शरीर की, मन की, वचन की क्रियाओं में कहीं अंतर नहीं होता, पाप की क्रियायें हो नहीं पातीं। यदि कहीं मजबूरी में हो रही हैं तो हमारी आत्मा हमें धिक्कारती है आत्मा अंदर से रोती है।

महानुभाव ! एक शेर पिंजरे के बाहर है एक पिंजरे के अंदर है, दोनों शेर हैं, किन्तु दोनों की शक्ति में बहुत अंतर है। एक स्वतंत्र है, दूसरा पिंजरे में पैर पटककर रह जाता है, कुछ कर नहीं सकता है। हमारी आत्मा पिंजरे में बंद शेर की तरह से है एक दूसरा शेर जो पिंजरे से निकलकर सिद्धावस्था को प्राप्त मुक्त दशा में है। हमारी आत्मा को भी मुक्ति मिलना चाहिये किंतु यह तभी संभव है जब हमें अपने स्वभाव का बोध हो। किन्तु हम तो परभावों में गति किये हुये हैं, पर भाव में आनंद मान रहे हैं इसलिये स्वभाव भाव की ओर ठहर नहीं पा रहे, स्वभाव की ओर गति नहीं कर पा रहे, स्वभाव हमें अच्छा नहीं लगता-जैसा दौलत राम जी ने लिखा-

''आतम के अहित विषय कषाय'' और ''आतम हित हेतु विराग ज्ञान''

ये दोनों बातें हैं संक्षेप में उन्होंने सूत्र दे दिये कि आतम का हित क्या है और अहित क्या है। आत्मा के अहित विषय कषाय हैं इनसे अपने मन को हटाने का हमने कितना पुरुषार्थ किया है और आत्मा का कल्याण करने वाला वैराग्य और सम्यग्ज्ञान है। वैराग्य को जीवन में कितना अंगीकार किया है और सम्यग्ज्ञान की कितनी उपासना की है।

महानुभाव ! संक्षेप में बस यही समझें कि अपनी श्रद्धा को पुनः बुहार लें, अपने चित्त की भूमि की थोड़ी सफाई कर लें क्योंकि मंदिर के शिखर पर पेन्ट करना हो तो पहले उस पर जमी काई को खुरचना पड़ता है। ऐसे ही अपने चित्त पर जो कर्मों की कुसंस्कारों की कालिख है उसे खुरच-खुरच कर दूर करना है और आत्मा परमात्मा को कहीं बाहर की दुनियाँ में नहीं खोजना, अपने अंदर ही खोजना है, खोदना है, जो खोदता है वही खुदा को प्राप्त कर पाता है जो खुद को नहीं पर को खोदता है उसे कभी खुदा नहीं मिल पाता।

महानुभाव ! आप सभी लोग श्रद्धावंत हैं, संतुष्ट हैं किन्तु मैं सोचता हूँ यदि आप पूर्ण श्रद्धावंत होते तो आपको दुःख का वेदन नहीं होता यदि आप कभी दुःखी होते हैं तो इसका आशय यह है कि जड़ों में अभी तक पानी पहुँचा नहीं, यदि फूल कुम्लाह रहे हैं तो आशय है कि कहीं आताप ज्यादा है इसलिये प्राण उसमें जीवंत नहीं रह पा रहे। मैं पुनः आप सबसे कहना चाहता हूँ-कि श्रद्धा ही हमारे धर्म की जड़ है, वह श्रद्धा ही हमारे प्राणों का प्राण है। वह श्रद्धा की जड़ें कमजोर व शुष्क न हों, कटी, खुरदरी न हों अन्यथा हमारे धर्म का वृक्ष हरा भरा न हो पायेगा इसलिये श्रद्धा की जड़ को मजबूत करें, यही धर्म का मर्म है, इस पर विचार करें जिससे धर्म के सम्यक्फल को प्राप्त कर सकें। आप सभी धर्म के समीचीन फल को प्राप्त करें-इसी मंगल भावना के साथ धर्मवृद्धि शुभाशीष।

'' शांतिनाथ भगवान की जय ''

चित्त शुद्धि

जीवन अस्थायी है, जीवन का कोई भरोसा नहीं है कब ये पूर्णता को प्राप्त हो जाये, वृक्ष से यह पुष्प कब नीचे गिर जाये कुछ कह नहीं सकते। जब तक यह पुष्प वृक्ष पर लगा है तब तक इसकी सुगंध भव्य जीवों को अपनी ओर आकर्षित करने वाली होती है हमारा जीवन भी ऐसा ही बने वह सुखद हो उसकी महक से आस-पास का वातावरण भी सुंगधित बने। हमारा जीवन भी प्राज्वल्यमान दीपक की तरह से प्रकाश पूर्ण हो जाये, जिसके दिव्य आलोक में हम भी अपनी आत्मा के वैभव को जान सकें और हमारी दिव्य ज्योति देखकर अन्य भव्य जीव भी अपनी आत्मा में ज्ञान की ज्योति जला सकें, प्रेरणा प्राप्त कर अपनी आत्मा को पहचानने का सम्यक् प्रयास कर सकें।

महानुभाव ! किन्तु यह अंधकार में संभव नहीं है, अंधकार को दूर करना ही पड़ेगा, जब तक अंधकार से संबंध रहेगा तब तक प्रकाश वहाँ आ न सकेगा। हमने दु:खों से, विकारों से, दुर्भाव से दोस्ती कर ली है, हमने संसार की विभाव दशा से तीव्र राग कर लिया है हमने राग से भी राग किया है, मोह से भी राग किया है, द्वेष से भी राग किया है इसलिये संसार से पार नहीं हो सके। पुण्य कार्य करने की हमारे अंदर भावना तो बहुत होती है और ऐसा नहीं कि हम पुण्य कार्य करते नहीं, किन्तु बात ये है हमारे जीवन में कुछ प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिन्हें हम जानते हैं कि ये पाप का कारण हैं, बंध का कारण हैं किन्तु फिर भी हम इन्हें छोड़ नहीं पाते। शायद पुण्य क्रिया करना आसान है किन्तु पाप क्रिया छोड़ना कठिन। पुण्य क्रिया एक मिथ्यादृष्टि भी कर सकता है वह अपने मन, वचन, काय से पुण्य क्रिया कर सकता है, एक अभव्य मिथ्यादृष्टि जीव भी पुण्य कर सकता है। पुण्य क्रिया मात्र करना अपने आप में पर्याप्त नहीं है, सबसे बड़ी बात तो यह है कि पाप से हमारी प्रीति छूटे। कई बार हम पाप छोड़ भी देते

हैं किन्तु पाप से हमारी प्रीति नहीं छूट पाती, पाप से हमें कभी भीती नहीं होती है इसीलिये हमें कभी आत्मा की प्रतीति नहीं होती है।

हमें अंधकारों से मुख मोड़ना पड़ेगा, विकारों को छोड़ना पड़ेगा, हमें संसार से मोक्षमार्ग की ओर भागना पड़ेगा। यह संभव नहीं है कि एक म्यान में दो तलवार आ जायें। यह संभव नहीं है कि तुम एक साथ किसी सिक्के के दो पहलुओं को देख लो, यह भी संभव नहीं है कि तुम नदी के दोनों किनारों पर एक साथ सैर कर सको, यह संभव नहीं कि दीवार के दो सिरे एक साथ मिल सकें, सर्कल में तो हो सकता है किन्तु जहाँ दो छोर हैं वे मिल नहीं सकते। यही समस्या हमारे जीवन में भी है हम चाहते तो बहुत कुछ हैं, किन्तु उनको पाने में जो बाधक तत्त्व हैं उनको दूर नहीं करना चाहते। जब तक बाधक तत्त्व दूर नहीं होंगे तब तक साधकतम तत्त्व हमारे साधक नहीं बन सकेंगे। यदि हम शत्रुओं के बीच घिरे हुये हैं और उन्हें ही मित्र मान लें तो जो हमारे असली मित्र हैं, जो हमारे लिये सबल और समर्थ हैं वे हमारी सहायता न कर सकेंगे। यह सोच हमारे अंदर होनी चाहिए कि ये हमारे वास्तव में असली शत्रु हैं या मित्र हैं।

जीवन में अशुद्धि ही अशुद्धि भरी पड़ी है, यदि घर आँगन में कोई बच्चा शौच कर दे तो आप वहाँ रुकना न चाहोगे, कहोगे जल्दी से जल्दी यहाँ से सफाई हो जाये, आप तो गंदे वस्त्र भी नहीं पहनना चाहोगे। किन्तु महानुभाव ! जब तक अंदर की गंदगी साफ न हो तब तक बाहर की सफाई कार्यकारी नहीं होती। यदि कोई सेब अंदर से सड़ रहा है और अच्छे सेबों के साथ रखा है तो कुछ देर बाद वे अच्छे सेब भी सड़ जायेंगे। बाहर के उजाले से, स्वच्छता से दूसरों को लुभाया तो जा सकता है, दूसरों को आकृष्ट तो किया जा सकता है किन्तु स्वयं सुखद अनुभूति नहीं की जा सकती। सुखद अनुभूति के लिये केवल बाह्य सफाई ही आवश्यक नहीं है अंदर की सफाई भी

आवश्यक है। केवल बातों ही बातों में सफाई हो या केवल व्यवहार ही व्यवहार में सफाई हो तो पर्याप्त नहीं है, सफाई बातों में नहीं आत्मा में हो, आत्मा के परिणामों में आचरण में हो, विचारों में हो। यदि विचारों में, आचरण में सफाई है तो तुम्हारी बाहर की सफाई सार्थक है। अन्यथा वह तो ऐसे ही है जैसे कोई शेर गाय का चमड़ा पहनकर आ जाये तो वह गाय नहीं कहलायेगा, सर्प कितना ही सुंदर भेष बना ले किन्तु कांचली के छोड़ने से जहर तो नहीं जाता है।

महानुभाव ! हमें भी अंदर की शुद्धि करना आवश्यक है, इस शुद्धि के कई उपाय हैं। जल के माध्यम से अशुद्ध वस्तु को साफ कर शुद्ध मान लिया जाता है। कुछ अशुद्धि ऐसी है मृतिका, गोबर, भस्म, मिट्टी, हवा, सूर्य, प्रकाश, अग्नि आदि से शुद्धि की जाती है। सबकी शुद्धि प्रक्रिया अलग-अलग है। वस्त्र की शुद्धि साबुन सर्फ से की जाती है, आभूषण की शुद्धि तेजाब आदि के द्वारा की जाती है। यदि वचनों में गंदगी (कड़वाहट) आ रही है तो प्रयास किया जा सकता है कि वचन धीरे बोलें, व्याकरण की अपेक्षा से शुद्ध बोलें, मिठास के साथ बोलें, सीमित बोलें तो उसके वचन भी अच्छे हो सकते हैं। यदि वह कर्कश बोलता है, तीखा, झूठ, कटु बोलता है तो वे वचन अशुद्ध ही माने जाते हैं।

जीवन में किसी को भी कभी, क्वचित् कदाचित् भी गंदगी पसंद नहीं है। कोई भी व्यक्ति अपने जीवन को समल नहीं बनाना चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को निर्मल स्वच्छ धवल बनाना चाहता है क्योंकि यह निर्मलता, स्वच्छता, धवलता हमारा स्वभाव है। विकारों में जीना हमारा विभाव है, विभावों में रहना हमारा शुद्ध स्वभाव नहीं है। संसार में जन्म-मरण करना, राग-द्वेष करना, क्रोध -मान, माया-लोभ का परिणाम हमारा स्वभाव नहीं है, इन्द्रिय विषयों में रहना, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री, पुरुष, नपुंसक

भाव परिणाम हमारा स्वभाव नहीं है। जो स्वभाव नहीं है वह विभाव है, मल है, गंदगी है यदि इस मल को अपनी आत्मा से चिपकाते जायेंगे तो हमारी आत्मा निर्मल, स्वच्छ धवल न हो पायेगी और जब तक आत्मा समल है तब तक हमें निर्मल आत्मा की अनुभूति नहीं हो पायेगी।

मल तो मल है, इसलिये उसको दूर करना ही पड़ेगा। दूसरी बात ये है कि मल तुम्हारा नहीं है तो उसे क्यों पकड़ते हो, जो तुम्हारी चीज है उसे पकड़ो। पूज्य आचार्य श्री कुन्द-कुन्द स्वामी जी ने समय सार में एक उदाहरण दिया है-जैसे कोई व्यक्ति दर्जी के यहाँ से अपना कपड़ा लेकर के आता है और पीछे से कोई आवाज लगाता है कि महानुभाव ! ये कपड़ा उतारो यह मेरा है। वह कहता है नहीं मेरा है इसमें तो मेरी पहचान पड़ी हुयी है किन्तु जब वह देखता है तो उसे अहसास होता है कि यह तो मेरा नहीं है और वह उसे जल्दी से जल्दी निकालने का प्रयास करता है और अपना कपड़ा खोजने लगता है।

जब व्यक्ति दूसरों के वस्त्र पहन लेता है तब वह अपने वस्त्र की खोज भी नहीं करता, और तब तक उसे पराये कपड़े त्याग करने का भाव भी नहीं आता। ऐसे ही जब तक हम पर पदार्थों में डूबे हुये हैं विभावों में पड़े हुये हैं तब तक उसे छोड़ने का भाव हमारे मन में आता ही नहीं है, और अपनी वस्तु प्रगट नहीं है इसलिये उसको पाने का, खोजने का भाव भी मन में नहीं आता है। तो महानुभाव ! अशुद्धि, मल ग्रहण करना हमारा स्वभाव नहीं है। दोषाच्छादक हमारा स्वभाव नहीं है हम गुणानुवेशक बनें, गुणग्राहक बनें, जो हमारा स्वभाव है उसे प्राप्त करने का सम्यक् पुरुषार्थ करें। शरीर की सफाई तो दिन में कई बार कर लेंगे भले ही यह जानते हैं कि यह शरीर तो मल की पिटारी है-

''सागर के जल से शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई।''

यह जानते हुये भी वह गर्मियों में तो 3-4 बार नहा ही लेता है, और वस्त्र भी जब तक उपयोग में आ रहे हैं तब तक तो वह उन्हें भी शुद्ध रखता है। मकान में जब तक रहता है तब तक तो उसकी भी सफाई करता है। यदि हम एक बार ऐसा भी सोचें कि जिस मन को लेकर हम घूम रहे हैं कभी-कभी उसकी भी तो सफाई कर लेनी चाहिये। हम माउथवॉश करते हैं तो कभी ब्रेनवॉश भी तो कर लेना चाहिए और मैं समझता हूँ कि यदि एक बार मस्तिष्क की सफाई हो जाये तो बाहर की सफाई करने की इतनी आवश्यकता न पड़ेगी, इसके विपरीत बाहर की चाहे कितनी भी सफाई कर ली जाये और मस्तिष्क की सफाई न की जाये तो वह अपर्याप्त ही रहेगी।

''पहले कसकर खूब परख लो, पीतल है या सोना।
चमक दमक पर रीझ-दीझ कर, अपना सर्वस्व न खोना॥''

एक बार उसे अच्छी तरह परख लो, जान लो, क्या पता पीतल में सोने से ज्यादा चमक हो। कई बार ऐसा होता है काँच की चमक के आगे हीरा भी फीका सा लगता है, किन्तु जिन्हें हीरे की परख होती है वे चमक को नहीं देखते हैं हीरे को देखकर पहचान कर लेते हैं। जिसे सही पहचान है वही नि:संदेह अंदर के गुण को पहचान सकता है, जिसे अंदर की पहचान नहीं वह नि:संदेह बाह्य में रीझ कर अपना सर्वस्व खो देता है

महानुभाव ! आवश्यकता है ब्रेनवॉश करने की। हमारे आचार्यों ने इसके उपाय बताये हैं और बताया है कि वही सच्चा धर्मात्मा है जो ब्रेनवॉश करता है। यदि अपनी आत्मा को रिझाना है, मनाना है, पहचानना है तो हमें अंदर में प्रवेश करना पड़ेगा, अब अपने चित्त का प्रक्षालन कैसे करें भगवान का प्रक्षालन तो खूब करते हैं। महानुभाव ! यदि हमारे चित्त में सफाई है तो हमें बाहर से इतना रगड़ने की आवश्यकता नहीं है, भगवान के चरणों को रगड़-रगड़ कर चमका

दिया किन्तु आज तक अपनी आत्मा को रगड़ न पाये, हम अपने इस कारण को समझ न पाये कि हम भगवान का अभिषेक क्यों करते हैं, पढ़ते जरूर हैं-

''तुम तो सहज पवित्र यह निश्चय भयो,
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो''

मैंने तुम्हारी पवित्रता के लिए प्रक्षालन (अभिषेक) नहीं किया है मैं राग-द्वेष की प्रवृत्ति से मलिन हुआ हूँ मैं अपने चित्त का प्रक्षालन करने के लिये इसे निमित्त बना रहा हूँ।

शास्त्र केवल पढ़ने के लिये नहीं पढ़ा जाता है उसे निमित्त बनाया जाता है अपनी आत्मा को पढ़ने के लिये। दर्पण चेहरे पर लगी कालिमा को साफ करने के लिए रखा जाता है ऐसे ही भगवान की पूजा उनके लिये नहीं की जाती है, अपनी आत्मा को पूज्य बनाने के लिये की जाती है। भगवान का अभिषेक उन पर लगी गंदगी को साफ करने के लिए नहीं अपितु अपनी आत्मा पर लगी किट्ट कालिमा को धोने के लिए किया जाता है। आचार्यों ने ब्रेनवॉश के लिये उपाय दिया-श्रावकों के लिये कहा-''आलोचना पाठ'' और मुनियों के लिए कहा ''प्रतिक्रमण''। इसके माध्यम से सुबह की गलती शाम व शाम की गलती सुबह धो दी जाती है, किन्तु इसके अलावा जो अंदर में कालिमा जमी है उसके लिए क्या करना चाहिए तो उसके लिए कहा है-

''मुनि सकल व्रती बड़भागी, भव भोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्त्यों अनुप्रेक्षा भाई।।

जो अंतरंग अनुप्रेक्षायें है, बारह भावनायें हैं वे निश्चित रूप से ब्रेनवॉश करने वाली हैं, चिंतन करने से आत्मा को संबोधन मिलता है, चिंतन करने से चित्त को शांति मिलती है यदि चिंतन चित्त के समीप है तो। चिंतन चित्त की उपज है, फसल है, वह सम्यक् चिंतन

चित्त के धरातल पर होता है। चित्त की भूमि के बिना वह चिंतन का बीज जमता नहीं है। केवल भावना के बारे में व्याख्या कर सकते हो, वैराग्य की मूर्ति बनाकर गढ़ सक सकते हो किन्तु जब तक तुम्हारे चित्त की भूमि पर वैराग्य के बीज अंकुरित नहीं होंगे तब तक चित्त निर्मल नहीं होगा। जब वैराग्य के बीज अंकुरित होते हैं तब तुम्हें नियम से स्वयं ही संबोधन मिल जाता है। हजारों लाखों उपदेश भी जो तुम्हें नहीं समझा सकते हैं वह तुम्हारे चित्त से पैदा हुआ चिंतन एक मिनट में समझा सकता है।

बाहुबली को बहुत समझाने का प्रयास किया गया, अपने भाई भरत से युद्ध करने जा रहे हो, वह तुमसे बहुत प्यार करता है, भतीजे विशालकीर्ति ने बहुत समझाया किन्तु बाहुबली नहीं माने। यदि वह सम्राट के नाते मुझे झुकाना चाहता है तो मैं नहीं झुकूँगा, हाँ यदि बड़े भाई के नाते झुकाना चाहते हैं तो मैं उनके श्री चरणों में झुक जाऊँगा। यदि वह तलवार की नोंक पर झुकाना चाहता है, सम्राट बनना चाहता है, चक्रवर्ती बन कर झुकाना चाहता है तो नहीं झुकूँगा। बाहुबली के मन में इतना स्वाभिमान कि वह युद्ध के लिये भी तैयार हो गये और न केवल युद्ध के लिए तैयार हुये बल्कि तीन युद्ध हुये भी-दृष्टि युद्ध, जल युद्ध और मल्ल युद्ध। दृष्टि युद्ध में किसकी पलकें पहले झुकें। तो भरत ऊपर बाहुबली को देख रहे थे और बाहुबली आँखें झुकाएँ भरत को। तो ऊपर आँखें होने के कारण भरत की पलकें झपक गई। बाहुबली विजयी हुए। जलयुद्ध में एक दूसरे पर पानी उचीटा बाहुबली कद में बड़े थे तो भरत द्वारा पानी उनके ज्यादा ऊपर नहीं पहुँच सका। जबकि बाहुबली भरत के सिर से पानी डाल रहे थे। अतः इसमें भी बाहुबली विजयी हुए। तीसरे मल्ल युद्ध में बाहुबली ने भरत को ऊपर उठा लिया पटकना ही चाहा कि दृष्टि एक साथ बदल गयी, आत्मा का चिंतन एक मिनट में बदल गया। धिक्कार है मुझे अपने भाई के

साथ ऐसा व्यवहार कर रहा हूँ, बगल में सिंहासन विराजमान था वहाँ उन्हें बैठाकर उनके चरणों में प्रणाम करके चल दिए। भरत तो हतप्रभ रह गये, उन्होंने कहा नहीं, बाहुबली ऐसा नहीं होगा यह लो चक्र, राज्य तुम संभालो। किन्तु बाहुबली ने भरत की एक न सुनी और चलते चले गये। पूरी सेना खड़ी है देख रही है किन्तु बाहुबली चलते चले गये। भरत से अब कुछ नहीं बना तो **''सौ से ज्यादा गिनती नहीं, पैरों से ज्यादा विनती नहीं''** और जाकर के बाहुबली के पैर पकड़ लिये और केवल पैर पकड़े ही नहीं अपितु अपना अंतिम हथियार भी चरणों में डाल दिया, अपने आँखों के जल से उनके चरणों का प्रक्षालन कर दिया-कवि कहते हैं-

''ऐसा दृश्य कभी देखने को नहीं मिलेगा कि प्रथम चक्रवर्ती ने प्रथम कामदेव दीक्षार्थी का अभिषेक अपनी आँखों के शुद्ध प्रासुक जल से किया और बाहुबली भी पिघल गये, कोमल हृदय वाले अपने बड़े भाई को कष्ट दिया दुःख दिया धिक्कार है मेरे लिये और उनकी भी आँखें नम हो गयीं। उनकी आँखों से जल टपक कर भरत के मुकुट पर गिरा मानो ऐसा लगा कि बाहुबली ने अपने अश्रुनयन से अपने बड़े भाई का राज्याभिषेक ही कर दिया हो और भरत ने अपने अश्रुओं से बाहुबली का दीक्षाभिषेक किया हो।

इतिहास में ऐसा अभिषेक न आज तक किसी का हुआ और न शायद कभी ऐसा होगा।

महानुभाव ! ब्रेनवॉश ऐसे ही होता है चित्त बदलता है तो एक क्षण भी नहीं लगता। हजारों लोगों के समझाने से जो काम नहीं हो सकता है वह काम एक सैकेण्ड के स्वसंबोधन से हो सकता है।

तो महानुभाव ! कहने का आशय यह है कि हमें अपना ब्रेनवॉश करना चाहिये सुबह शाम चिंतन करना चाहिये। यह भावनायें निःसंदेह

भव का नाश करती हैं चाहे संसार शरीर भोगों से विरक्ति की भावनायें हों, मैत्री, प्रमोद, कारुण्य या माध्यस्थ भावना हो, चाहे बारह भावना हो, सोलह कारण भावना हो ये सब भावनायें भव से पार लगाने वाली नौकायें हैं। इन नावों में बैठे बिना आज तक कोई भी महापुरुष, कोई भी संसारी प्राणी संसार सागर से पार नहीं हुआ इसीलिये ये बारह भावनायें चित्त को सम्यक् संबोधन देती हैं। जिसमें कोहराम मचा हुआ है, अशांति है, आंदोलन मचा है ऐसे सभी के मस्तिष्क में यह बारह भावनायें शांति देती हैं।

''समुद्र पुरुष कूँ है इसीलिये कुछ गहराई लिये हुये है।
वरना मचलती नदियों में कोई गहराई नहीं होती॥''

जहाँ पर तुच्छता होती है वहाँ थोथापन, ओछापन हो सकता है किन्तु समुद्र में कभी ओछापन नहीं होता, वह इतना गहरा होता है उसमें कितनी ही नदियाँ आकर गिर जायें तब भी समुद्र की गंभीरता दूर नहीं होती, वह कभी अपनी सीमा को तोड़कर बाहर नहीं आता। नदियाँ भले ही अपनी सीमा तोड़कर बाढ़ का रूप ले लें। किन्तु समुद्र में बाढ़ ऐसे नहीं आती। महानुभाव! मेरा आपसे यही कहना है कि आप धीर, गंभीर बनें, आपका व्यक्तित्व गुरु यानि भारी बने। आप अपने जीवन की बुराइयों को दूर करें। हम जीवन में सबको शुद्ध करना चाहते हैं दाल में से कंकड़ तुंरत अलग कर देंगे ये प्रवृत्ति हमारी है किन्तु हमारे चित्त में लगी गंदगी को उठाकर बाहर क्यों नहीं फेंकते, घर में पड़ी गंदगी को तो तुरंत बाहर फेंक देते हैं। हम प्रयास करें अपने चित्त की गंदगी को बाहर फेंकने का, तभी हमें वास्तव में आत्मशांति का अनुभव होगा और मैं यही चाहता हूँ कि आप सभी भी शांति का अनुभव करें यही मेरी आप सबके प्रति मंगल भावना है इन्हीं शुभ मंगल भावना के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

'' शांतिनाथ भगवान की जय ''

धर्म एवं विज्ञान

आप सभी लोग इन दो शब्दों से बहुत अच्छी तरह परिचित हैं। इन दो शब्दों के भाव से आज तक परिचित हो सके हों या नहीं, किन्तु ये दोनों शब्द चलन में प्राय:कर के अच्छी तरह से चल रहे हैं। ये दोनों शब्द किसी के लिये ढाल हैं तो किसी के लिए तलवार, ये दोनों शब्द किसी के लिए सुरक्षा कवच हैं किसी के लिए प्राण घातक बाण। यह दोनों शब्द किसी के लिए बैसाखी का काम कर रहे हैं तो किसी के लिए अर्थी का काम कर रहे हैं। महानुभाव ! जब किसी भी वस्तु का दुरुपयोग किया जाता है तो नि:संदेह वह वस्तु घातक सिद्ध हो जाती है जब-जब भी मानव जाति ने किसी भी वस्तु का सदुपयोग किया है वह वस्तु उसके लिये वरदान स्वरूप सिद्ध हुयी है और जब-जब भी किसी वस्तु का दुरुपयोग किया गया है तब-तब मानव जाति का विनाश हुआ है, ह्रास हुआ है इतना ही नहीं वह युगों-युगों तक अभिशाप रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त हुयी।

महानुभाव ! वर्तमान में हम यह देखते हैं कि व्यक्ति की यह धारणा बनी हुयी है कि धर्म एक अलग चीज है और विज्ञान एक अलग चीज है। धर्म और विज्ञान को एक दूसरे का विरोधी मानते हैं, जो भौतिक वस्तुओं के जाल में फँसा है, इसमें रचा-पचा है, जिसकी आसक्ति भौतिक पदार्थों में है ऐसा व्यक्ति कदापि धर्मात्मा नहीं हो सकता और जो धर्मात्मा है उसे विज्ञान से कुछ लेना-देना नहीं है। यह प्राय:कर के आम आदमी की धारणा बनी हुयी है किन्तु मैं समझता हूँ कि यह धारणा उचित नहीं है और जो उचित नहीं है ऐसी मान्यता-धारणा को तोड़ देना चाहिये। यदि मिथ्याधारणा भी ज्यादा समय तक रहती है तो वह मिथ्या धारणा भी सम्यक् जैसी प्रतीत होने लगती है। मिथ्या धारणा के बीज, व उसकी कलम से वृक्ष जो आपने

आरोपित किये हैं अब उन बीजों को उखाड़ना प्रारंभ कर दो, अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है, सुबह का भूला हुआ शाम को घर वापस आ जाता है तो वह भूला हुआ नहीं कहलाता है। फिर क्या मानें ? क्या विज्ञान और धर्म दोनों हमारे लिये उपकारक हैं? नि:संदेह दोनों का अपने-अपने स्थान पर बहुत बड़ा महत्व है। एक व्यक्ति कहता है-मेरी आत्मा का ही मेरे लिए बहुत बड़ा महत्व है। आत्मा ही परम उपादेय है आत्मा से ज्यादा कुछ भी उपादेय नहीं है। बाकी सब पर पदार्थ पुद्गल हैं त्याज्य हैं, हेय हैं।

दूसरा व्यक्ति कहता है-मानव शरीर मेरे लिए परम उपादेय है दोनों की दृष्टि अलग-अलग है दोनों सही रास्ते पर हैं किन्तु सही रास्ता भी कई बार गलत रास्ते पर पहुँचा देता है। आप सुनकर भी चकित हो रहे होंगे कि यदि सही रास्ता ही गलत स्थान पर पहुँचा दे तो क्या गलत रास्ता सही स्थान पर पहुँचायेगा? मेरा कहने का अभिप्राय ऐसा नहीं है। कभी-कभी रास्ते का आश्रय लेकर व्यक्ति गलत स्थान पर पहुँच सकता है क्योंकि जरूरी नहीं कि वह सही रास्ते पर सही दिशा में चले। जो रास्ता शिखर जी की ओर ले जाने वाला है, आपकी दूरी कम करने वाला है दरअसल में वही रास्ता शिखर जी से तुम्हारी दूरी बढ़ाने वाला है यदि आपका मुख शिखर जी की ओर है तो नि:संदेह आपको शिखर जी पहुँचा देगा किन्तु यदि आपकी पीठ शिखर जी की ओर है तो आप कितना भी गमन करोगे आप शिखर जी से दूर होते चले जाओगे। दोष रास्तों को मत दो, कहा भी है-

''मार्ग को मत दोष दे, आँखें करके लाल।
जूते में जो कील है, पहले उसे निकाल॥''

व्यक्ति कई बार रास्तों को दोष देने लगता है कि रास्ता खराब है। रास्ता यदि खराब होता तो इतने महापुरुष लक्ष्य की प्राप्ति कैसे

कर सके, रास्ता खराब नहीं हमारी करनी खराब है, हमारी करतूत खराब है हमारी क्रियायें खराब है, हमारा व्यवहार खराब है, हमारी सोच खराब है, हमारी भाषा, विचार, आसपास का माहौल जो कि हमने ही निर्मित किया है वह खराब है, इसलिये हम खराब हैं और हम खराब हैं इसलिए हमारे आस-पास का माहौल खराब है।

महानुभाव ! रास्ता सदैव स्वच्छ था, है और रहेगा, मार्ग कभी बाधक नहीं होता। कोई कहे इस रास्ते से नहीं जाना यह रास्ता लूट लेता है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार में लिखा है कि रास्ता लूट लेता है, इस रास्ते से नहीं जाना। क्या कभी रास्ता लूटता है, रास्ता कभी किसी को नहीं लूटता हाँ वहाँ रहने वाला व्यक्ति लूट सकता है। ऐसे ही यह कहना कि ये रास्ता अच्छा है, स्वागत करता है तो रास्ता स्वागत नहीं करता, रास्ते में मिलने वाले व्यक्ति स्वागत कर सकते हैं। किसी रास्ते में धूप होती है किसी में छाँव होती है, किसी व्यक्ति को धूप भी अच्छी लग सकती है किस को छाँव भी अच्छी लग सकती है।

इसी तरह जीवन के दो आयाम अत्यंत अनिवार्य हैं, किसी एक के बिना जीवन चल ही नहीं सकता। जैसे आपको व्यवहार में जीवन जीने के लिए जितनी शरीर की आवश्यकता है उतनी ही आत्मा की आवश्यकता है, आत्मा के बिना भी तुम जी नहीं सकते और शरीर के बिना भी तुम जी नहीं सकते। यदि शरीर छूट गया तो मर गये और आत्मा छूट गयी तो मर गये। इसी तरह विज्ञान भी आवश्यक है और धर्म भी आवश्यक है।

"Religion is lamb without science and science is blind without religion."

यदि विज्ञान धर्ममय नहीं है तो विज्ञान अपने आप में अंधा है और धर्म विज्ञानमय नहीं है तो वह धर्म भी अपने आप में लंगड़ा है।

यदि एक अंधा है और एक लंगड़ा है, जंगल में आग लग जाये तो न लंगड़ा व्यक्ति दौड़कर अपने प्राण बचा पायेगा और न ही अंधा व्यक्ति। अंधा यदि दौड़े भी तो संभव है कि अग्नि की ही तरफ दौड़ न लगा दे और लंगड़ा यदि वैसाखी का सहारा ले भी ले तो चल तो सकता है किन्तु दौड़ नहीं सकता। वैसाखियों के सहारे से दौड़ नहीं लगायी जा सकती। परायी विद्या से, पराई बुद्धि से कोई व्यक्ति मोक्ष मार्ग में दौड़ नहीं सकता। स्वयं के ज्ञान के माध्यम से, स्वयं के विज्ञान के माध्यम से, स्वयं के पैरों की ताकत से दौड़ सकता है अन्यथा नहीं। दूसरों के हाथ पकड़ कर चल तो सकता है दौड़ नहीं सकता, यदि दौड़ने का दुस्साहस भी किया तो गिर जायेगा और सामने वाला उसे खचोट कर ले जायेगा।

महानुभाव ! इसीलिये सत्यता तो यही है कि विज्ञान के बिना धर्म भी लंगड़ा है यदि हमारे जीवन में विज्ञान नहीं है तो बिना ज्ञान के जितनी भी क्रियायें हैं, आचार्यों ने कहा व्यवहार ज्ञान के बिना, तत्त्वज्ञान के बिना, आत्मज्ञान के बिना वे सब संसार वर्धक हैं।

''तत्त्वज्ञानविहीनानां दुःखमेव हि शाश्वतम्''

संसार के जितने भी भौतिक पदार्थ हैं वे सभी भौतिक पदार्थ केवल दुःख ही दे सकते हैं। बिना धर्म के सुख के निमित्त नहीं बन सकते। और यदि धर्म है, धर्म के क्षेत्र में ज्ञान नहीं है, क्रिया किए जा रहें हैं उस क्रिया का तत्त्व नहीं मालूम है, विधि नहीं मालूम है तो वह क्रिया भी दुःखदायक बन जाती है।

''देखा देखी साधे जो क्षीणे काया बाडे रोग''

यदि कोई बिना जानकारी के देखा देखी में साधना करता है, तप करता है तब उसका शरीर निःसंदेह क्षीण हो जाता है, रोगों की वृद्धि हो जाती है। यदि केवल कोई जानता ही रहता है तो जानने वाला

व्यक्ति भी अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकता, कोई कितना ही अच्छा वैद्य क्यों न हो और एक रोग की 100 औषधि भी जानता हो, किन्तु एक भी औषधि का सेवन न करे तो उसका रोग कभी ठीक नहीं होगा।

इसीलिये नीतिकारों ने कहा-

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः,
यस्तुः क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।
सुचिंतितं चौषधमातुराणां,
न नाम मात्रेण करोतु रोगं॥

शास्त्रों को केवल पढ़-पढ़ के मूर्ख पैदा होते हैं, यदि शास्त्रों पर ज्ञान का अंकुश न हो तो शास्त्र पढ़कर व्यक्ति उद्दण्डी, अहंकारी, मानी, मायाचारी, क्रोधी, लोभी हो जायेगा विकारों से युक्त हो जायेगा और यदि विज्ञान पर धर्म का अंकुश हो जायेगा, यदि ज्ञान रूप हाथी भी धर्म रूपी अंकुश के वश में रहता है तो अपने पर सवार उस सवारी को गन्तव्य तक पहुँचा सकता है। वह हर किसी से टकरा सकता है वह सामान्य आपत्ति-विपत्ति चूर-चूर करता हुआ मंजिल तक अवश्य पहुँच जायेगा।

तो महानुभाव ! जो सिर्फ शास्त्रों को पढ़ते हैं, उनमें लिखी बातों को अपने जीवन में धारण नहीं करते हैं तो जीवन में मूर्खता आ जाती है, वह व्यक्ति मूर्ख नहीं महामूर्ख, वज्रमूर्ख बन जाता है इसीलिये कहा है कि अज्ञानी को समझाना सरल है किन्तु कुज्ञानी को समझाना बड़ा कठिन है, अल्पज्ञानी को व्यक्ति समझा सकता है।

भर्तृहरि ने नीति शतक में कहा है-''अल्पज्ञश्च सुख माराध्य''

जो व्यक्ति अल्पज्ञ है उसे सुख पूर्वक सिखाया जा सकता है और यदि कोई ज्ञानवान् है उसे और विशेष पूर्वक अच्छे से समझाया

जा सकता है किन्तु जो ''लव मात्र विदग्धानाम्'' किंचित् ज्ञान को प्राप्त कर दग्ध हो रहे हैं अहंकार में जले जा रहे हैं उनको तो ब्रह्मा भी आकर के नहीं समझा सकता। बात यह है कि जो अपने को अज्ञानी स्वीकार कर लेता है वह ग्रहण करने के लिये जिज्ञासावान् बना रहता है और जो सोच लेता है कि मैं अपने आप में पूर्ण हूँ तो ऐसे व्यक्ति को समझाना तो ब्रह्मा के वश की भी बात नहीं है।

महानुभाव ! धर्म की सवारी विज्ञान हो और विज्ञान के हाथी पर धर्म का अंकुश हो यदि सवार बिना सवारी के चलेगा तो कितना काल लग जायेगा, इसीलिये विज्ञान एक सवारी की तरह से है धर्म रूपी सवार के लिए। धर्मात्मा यदि विज्ञान रूपी सवारी पर आरूढ़ होकर गमन करता है तब नि:संदेह अपने गन्तव्य तक पहुँच सकता है और धर्म अंकुश है, विज्ञान रूपी हाथी के लिए। यदि कोई हाथी उच्छृंखल हो जाये तो वह बहुत विध्वंसक हो सकता है, संहारक हो सकता है।

अत: विज्ञान को समझना बहुत आवश्यक है। **''सर्व विज्ञान युक्ताय सर्व कला विशारद ''**

श्री आदिनाथ भगवान सर्व विज्ञान से युक्त जिन्होंने षट्कर्म उपदेश दिये, जिन्होंने श्रमण और श्रावक के लिए अलग-अलग उपदेश दिये और अपने पुत्रों को भी अलग-अलग उपदेश दिए। अलग-अलग प्रकार की कलाऐं, विद्यायें, ब्राह्मी पुत्री को ब्राह्मीलिपि सिखायी, सुन्दरी पुत्री को अंक गणित सिखाया, विश्वकर्मा को वास्तुविज्ञ बनाया, भरत को नाट्य शिक्षा, अर्थ शिक्षा में पारंगत किया। बाहुबली आदि अनेक पुत्रों को पृथक्-पृथक् विद्यायें सिखायीं, उनमें पारंगत किया। विज्ञान का आशय होता है-आपकी भाषा में परिभाषा कहें तो-

किसी भी विषय के सुव्यवस्थित क्रमबद्ध ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। दूसरे प्रकार से धर्म की दृष्टि से यदि परिभाषा करें तो-

''विशिष्टं ज्ञानं इति विज्ञानम्''-"Special Knowledge is called science"

सामान्य ज्ञान तो निगोदिया जीव से लेकर सभी प्राणियों में पाया जाता है ज्ञान का अभाव तो किसी में नहीं है, किन्तु Special Knowledge होना चाहिए, यदि विशेष ज्ञान है तो सन्मार्ग में आपके लिए गाइड का काम करता है यदि नहीं है तो आप खड़े रहोगे चौराहे पर पूछोगे रास्ता यहाँ जाता है कि वहाँ। जब तक कोई व्यक्ति आपको रास्ता बताने वाला नहीं मिलेगा तब चाहे आपके पास कितनी ही अच्छी स्पीड वाली गाड़ी हो और आपको ज्ञान न हो कि रास्ता कहाँ जा रहा है आप मंजिल तक नहीं पहुँच पाओगे और चक्कर ही लगाते रहोगे।

धर्म और विज्ञान हैड और टैल की तरह से एक साथ रहने वाले हैं। जैसे सिक्के के दोनों पहलू यदि किसी एक को निकाल दिया तो सिक्का चल नहीं सकेगा, उसके माध्यम से बाजार में आप कोई वस्तु खरीद नहीं सकेंगे, ऐसे ही आपके पास विज्ञान भी होना चाहिए, धर्म भी होना चाहिए। विज्ञान हर वस्तु का होता है चाहे जीव विज्ञान हो, पदार्थ विज्ञान हो, चाहे कर्म विज्ञान हो, चाहे तत्त्वविज्ञान हो सभी जैसे-गृह विज्ञान, भोजन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, ध्वनि विज्ञान, प्रचार विज्ञान, खगोलविज्ञान, इतिहास विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान जितने भी विषय आपके दिमाग में आ सकते हैं वे सभी विज्ञान हो सकते हैं और किसी भी प्रकार का विज्ञान घातक नहीं है यदि आप उसका सदुपयोग करना जानते हैं तो। प्रत्येक प्रकार का विज्ञान अपने आप में वरदान है। प्रत्येक विज्ञान अभिशाप भी हो सकता है यदि दुरुपयोग करते हैं तो।

विज्ञान बहुत जरूरी है, उसके माध्यम से शरीर के सुख प्राप्त हो सकते हैं। भौतिक संसाधनों का संग्रह किया जा सकता है, पुद्गल का विश्लेषण किया जा सकता है। विज्ञान शरीर सुरक्षा का कवच दे सकता है, वह शरीर की बीमारियों को दूर करने का उपाय बता सकता है। विज्ञान आपके बाह्य शत्रुओं को जीतने का मार्ग बता सकता है, विज्ञान आपको अच्छे-अच्छे लिबास दे सकता है। विज्ञान बस ऐसा है जैसे गिलास और धर्म ऐसा है जैसे उसमें रखा पानी, विज्ञान मानो केले का छिलका, धर्म मानो केला अथवा मूंगफली का दाना। तो विज्ञान सुरक्षा कवच है हम उसे सुरक्षा कवच बनायें। जिन पत्थरों से ठोकर खायी है उन्हीं पत्थरों से महापुरुषों ने यहाँ सीढ़ी बनायी है, जिनसे हमने ठोकरें खायी हैं उन्हीं से वे महापुरुष सीढ़ी बनाकर अपने गन्तव्य तक पहुँच गये जो इस कला को नहीं जानते थे वे ठोकर खाकर भटक गये। तो विज्ञान के वैज्ञानिकों ने उसके लिये बहुत प्रयास किया है, वे कितने आगे बढ़ते चले जा रहे हैं।

जो खोजें आज चल रही हैं वे अनादि काल से थीं और आज भी हैं व अनंत काल तक रहेगी। किन्तु कुछ काल के लिये कुछ व्यक्ति विस्मृत हो गये थे इसलिए उन्होंने ऐसा कह दिया कि वहाँ ऐसा हो रहा है तो उसका वह आविष्कार कर्ता हो गया। कोई वस्तु किसी ने बनायी नहीं है और न कोई व्यक्ति कोई नया निर्माण कर सकता है और न कोई व्यक्ति किसी वस्तु को नष्ट कर सकता है, क्योंकि संसार में पर्याय की अवस्था से लेकर के देखेंगे तो-"Nothing is Permanent in this world". कुछ भी शाश्वत नहीं है और द्रव्य की अपेक्षा से देखेंगे तो-"Everything is Permanent in this world".

प्रत्येक वस्तु शाश्वत है द्रव्य की अपेक्षा से इसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता। हमारी आत्मा के एक प्रदेश को कोई कम नहीं कर सकता, नष्ट नहीं कर सकता या धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, कालद्रव्य

आदि के एक भी अंश को, परमाणु को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता और कोई भी एक अंश या प्रदेश को बना नहीं सकता। बस यही है कि हम इसे कभी भूल जाते हैं तो कभी जान जाते हैं-जो सम्पूर्ण को जानने वाले होते हैं वे सर्वज्ञ बन गये जो कुछ-कुछ जानने वाले होते हैं वे छद्मस्थ कहलाते हैं।

महानुभाव ! धर्म के माध्यम से कल्याण होता है यह शाश्वत सूत्र है इसको कोई नकार नहीं सकता। आज भी धर्म के माध्यम से कल्याण होता है, कल भी होता था और आगे भी धर्म के माध्यम से ही कल्याण होगा यह शाश्वत सत्य है, किन्तु उस धर्म का उपयोग या प्रयोग कैसे किया जाये यह कला हमें विज्ञान से ही सीखनी होगी। यदि आपके पास दूध है तो उसको पीना है या नहाना है, भोजन आपके पास है तो उसे पेट में डालना है या पीठ में बांधना है, यदि यही कला नहीं है तो वही वस्तु जो धर्म के माध्यम से, पुण्य के माध्यम से आपको प्राप्त हुयी है वह आपको पूर्ण सुख न दे सकेगी। उससे पूर्ण सुख लेने का तरीका बताता है विज्ञान। यदि आपने तरीका जान लिया और वस्तु आपके पास नहीं है तो भी आप अपने आप में अधूरे हैं, वस्तु प्राप्त कर ली और तरीका नहीं आता है तब भी अपने आप में अधूरे हैं।

आज से लगभग 450 वर्ष पहले एक भारतीय नागरिक विदेश यात्रा करने के लिए गया। उस व्यक्ति का नियम था कि मैं शुद्ध दूध आदि का ही प्रयोग करूँगा। श्रावक था शुद्ध भोजन करने वाला, तो वह एक गाय अपने साथ रखता। यदि कहीं अपने देश में यात्रा करता तो साथ में ट्रक चलता था वह उसे उसमें रखकर ले जाता। जब वह विदेश भी गया तो वहाँ भी उसे साथ ले गया, उसे भरोसा नहीं था कि वहाँ शुद्ध दूध मिलेगा या नहीं इसीलिये अपने साथ गाय को ले गया। वहाँ उसने उस गाय के दूध के माध्यम से मावा, रबड़ी आदि

बनायी और स्वयं खायी, साथ ही वहाँ के राजा के सामने भी भेंट किया। राजा ने वह मिठाई खाई तो उसे बहुत अच्छी लगी, राजा का मन लुभा गया।

राजा ने पूछा यह कहाँ से आई, उस भारतीय ने कहा-मेरे पास एक पेड़ है मैं उससे तोड़ लेता हूँ। वह राजा बोला-भाई तुम मेरे देश में आये हो तो कुछ भी हो यह पेड़ तो तुम्हें यहाँ छोड़कर जाना पड़ेगा, वह बोला नहीं मैं पेड़ नहीं छोड़ सकता। राजा ने कहा मैं तुम्हें इनाम दूँगा। वह भारतीय लोभ में आ गया-बोला मैं सोचूँगा। राजा ने कहा सोचो मत मूल्य बताओ और कहने के साथ ही रत्नों का थाल उसके सामने रख दिया। रत्न देख उसके मुँह में पानी आ गया। उसने कहा ठीक है यह पेड़ मैं छोड़ जाऊँगा, यह समय-समय पर आपको फल देता रहेगा और रत्नों का थाल लेकर जल्दी ही वहाँ से कूच कर गया, कहीं राजा का मन न बदल जाये। इधर राजा ने अपने सेवकों से कहा देखो ! यह पेड़ जो फल दे वह मेरे पास ले आना किन्तु ध्यान रखना फल कच्चा नहीं तोड़ कर लाना उस भारतीय ने कहा था कि कच्चा फल कषायला, खट्टा होता है, अतः जो फल स्वयं पक कर गिरे वही लाना उसे ही मैं खाऊँगा।

सेवकों ने कहा-ठीक है राजन् ! जैसे ही सेवकों ने देखा की गाय ने गोबर किया वे उसे सोने-चाँदी के थाल में लेकर के राजा के पास ले आये बोले महाराज ! देखो वृक्ष ने फल दिया और हम तुंरत ले आये, राजा ने चखा तो मुँह बिगाड़ा और कहा ये तो बड़ा बेस्वाद है, तुम कच्चा ले आये होंगे, तभी दूसरा सेवक आया, गाय का मूत्र लेकर, बोला राजन् पेड़ ने यह फल दिया, राजा ने पुनः चखी तो वह खारी सी लगी। वह राजा बोला-यह भी वैसा फल नहीं है, लगता है भारतीय व्यक्ति मुझे ठग गया, बुलाओ उसे जल्दी से और अपने सेवकों को तुरंत दौड़ कर भेजा, वे गये और उसे पकड़ कर ले आये।

राजा ने कहा-तूने मुझे धोखा दिया है यह वृक्ष वैसा फल नहीं दे रहा है जो तूने मुझे दिया था, ये तो बड़े बेस्वाद फल दे रहा है। वह बोला-महाराज वृक्ष तो वही है मैंने इसे बदला नहीं, वृक्ष का जो फल है उसे प्राप्त करने की आप विधि नहीं जानते, कोई फल वृक्ष के ऊपर लगता है, कोई फल वृक्ष के नीचे लगता है, जैसे मूली गाजर आदि जमीन पर लगते हैं वह आप वृक्ष पर ढूंढो तो नहीं मिलेंगे। राजा ने कहा-तो इसके फल कहाँ लगते हैं? वह गाय के पास गया, एक बर्तन लाया और उसके थन से दुहने लगा और महाराज को पिलाया महाराज ने चखा कहा-वाह ! यह तो बड़ा स्वादिष्ट है मीठा है, उसने उस दूध को तपाया तो मावा बन गया, थोड़ी शक्कर मिला दी तो और स्वादिष्ट हो गया, पुनः और भी सामान जैसे रबड़ी, पनीर, दही आदि बनाकर खिलायी।

महानुभाव ! कहने का आशय है कि वृक्ष वही है किन्तु सही विधि का ज्ञान न होने के कारण राजा को खट्टे फल दे रहा है और भारतीय को मीठे। ऐसे ही धर्म की वस्तु तुम्हें प्राप्त भी हो गयी, यदि धर्म की क्रिया करने का सही ज्ञान नहीं है तो वही चीज हमारे लिये घातक हो जाती है। तलवार से हमें अपने शत्रुओं को नष्ट करना है या अपना गला काटना है क्या करना है, उस तलवार से धर्म धर्मात्माओं की रक्षा भी की जा सकती है और उसके माध्यम से अपने भक्षक का वध भी किया जा सकता है।

यह कला विज्ञान के माध्यम से आती है बिना विज्ञान के यह कला असंभव है। धर्म आवश्यक इसलिये है कि हमें आत्मा का सुख चाहिये और विज्ञान आवश्यक इसलिये है कि धर्म हम तभी कर सकते हैं जब हमारा शरीर स्वस्थ हो। यदि शरीर रोगी है तो भी धर्म के फल का अनुभव न हो सकेगा। ऐसे ही विज्ञान के माध्शम से हम यह जान लें कि किस वस्तु का हमें किस प्रकार प्रयोग करना है तब निःसंदेह हम धर्म के फल को प्राप्त कर सकते हैं।

''तत्त्वज्ञान विहीनानां नैर्ग्रन्थ्यमपि निष्फलम्''

तत्त्वज्ञान-आत्मज्ञान से रहित यदि मुनि अवस्था है, निर्ग्रन्थपना है तो वह भी निष्फल है। यदि कोई मुनि महाराज आत्मा के स्वरूप को नहीं जानते हैं और वे बहुत तपस्या भी करें, तो उस तपस्या से शरीर को तो नष्ट किया जा सकता है किन्तु बिना ज्ञान के की गयी तपस्या से कर्मों का समूलनाश नहीं किया जा सकता। तो महानुभाव ! इसीलिये आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी ने कहा-

जं अण्णाणी कम्मं भवसय सहस्स कोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण।

ज्ञानी व्यक्ति अपने संयम साधना के माध्यम से जितने कर्मों का क्षय एक श्वांस में करता है, अज्ञानी व्यक्ति उतने कर्मों का क्षय हजारों करोड़ भवों में कर पाए।

तो विज्ञान के मायने में आप केवल एक अंश को न पकड़ो-आपने वस्तु के एक विषय को जान लिया तो वह एक पार्ट सम्पूर्ण वस्तु नहीं होती। यदि आपने कह दिया-टमाटर लाल होता है और फिर आपके सामने गाजर रख दिया जाये फिर कहें कि इसे टमाटर समझकर खाओ-लाल तो मिर्ची भी होती है, सेब भी होता है बहुत सारी वस्तुओं का रंग लाल होता है तो उन सबको टमाटर तो नहीं कहेंगे, वह लाल भी है गोल भी है सब बातें एक-एक कर कहनी पड़ेंगी तब उसका सम्पूर्ण ज्ञान हो पायेगा। यदि एक चीज को पकड़ कर बैठ गये तो सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त न हो पायेगा। **''विकलादेशा नयाधीनाः, सकलादेशा प्रमाणाधीनाः॥''** जैन दर्शन में किसी वस्तु के किसी एक अंश का ज्ञान कराने वाले हेतु को नय कहते हैं। प्रमाण के माध्यम से सर्वांश का ज्ञान होता है।

महानुभाव ! आपने विज्ञान को अभी पूरा नहीं पकड़ा, एक पार्ट को पकड़ लिया-जैसे आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी जी ने सर्वार्थसिद्धि में

लिखा है-कि एक राजा के सात पुत्र थे, सातों ही जन्म से अंधे थे, राजा हाथी पर सवारी करता था और कहता था कि हाथी पर सवारी करने पर बड़ा ही आनंद आता है। ऐसा आनंद न रथ में है न बाकी किसी अन्य वाहन में। यह सुनकर राजपुत्रों ने कहा-पिताश्री हम भी हाथी देखना चाहते हैं, उनके सेवक ने कहा ठीक है हम दिखायेंगे और वह सेवक सातों राजपुत्रों को कदली वन में ले गया जहाँ हाथी थे और कहा देखो वे रहे हाथी। राजकुमारों ने कहा-अगर ऐसे दिखाई देता तो तुमको साथ में क्यों लाते, पहले बताओ हाथी कहाँ है ? तो सेवक ने सातों राजकुमारों में से किसी को हाथी का एक पैर पकड़ा दिया, किसी को पूंछ, किसी को सूंड, किसी को कान, किसी ने दाँत, सब ने हाथी के एक-एक पार्ट को पकड़ कर अनुभव किया।

फिर जब वे वहाँ से निकल कर आये, आपस में चर्चा करने लगे। वाह! आज हमने हाथी देखा वे समझे कि वहाँ बहुत से हाथी होंगे तो सबने अलग-अलग देखा होगा, तभी पहला बोला हाथी तो ऐसा होता है बिल्कुल रस्सा जैसा दूसरा बोला अरे तू कुछ नहीं जानता हाथी तो होता है केले के स्तम्भ जैसा, खम्भे जैसा। तीसरा बोला तुमने कुछ नहीं देखा-हाथी तो सूपे जैसा होता है, हिलता-डुलता रहता है पीपल के पत्ते की तरह से, तभी अगला बोला तूने भी कुछ नहीं देखा हाथी तो टेढ़ी लकड़ी जैसा होता है, तभी वह राजपुत्र जो ऊपर चढ़ गया था वह बोला अरे हाथी तो बड़ा लम्बा चौड़ा होता है चबूतरे जैसा जिस पर मैं लेट जाऊँ, अरे तेरा जाना भी बेकार, हाथी तो बिल्कुल चिकना-चिकना सा होता है, आपस में सातों लड़ने लगे कि तुम झूठ बोल रहे हो, हाथी तुमने नहीं देखा मैंने देखा है।

सेवक सोचने लगा हाथी दिखाकर मैंने तो एक समस्या और मोल ले ली, अब पुनः दुबारा जंगल गये और सबको वही हिस्सा पकड़ा दिया जो पहले पकड़ा था और कहा यही हाथी है न, उन्होंने

कहा हाँ-हाँ यही है, फिर उन्हें उनके स्थान से घुमा दिया और सबको अलग-अलग सभी पार्ट को छू कर बतलाया कि हाथी ऐसा होता है। तो महानुभाव ! जब सम्पूर्ण हाथी को देख लिया तब उन अंधे राजकुमारों को ज्ञान हुआ कि हाँ वास्तव में हाथी कैसा होता है। ऐसे ही हम सम्पूर्ण विज्ञान को जान लें, सम्पूर्ण विज्ञान को जानने का आशय है सर्वज्ञता। उसके बाहर कुछ भी नहीं है, जो कुछ भी है वह सब सर्वज्ञ के ज्ञान में है, जो कुछ भी है वह सर्वज्ञ के दृष्टि गम्य है इसके बाहर कुछ भी नहीं।

विज्ञान ने साधन तो बहुत ला दिये, मात्र साधन से कुछ नहीं होता है, होता है तो उनके सदुपयोग से। सदुपयोग द्वारा वह वरदान रूप और दुरुपयोग द्वारा अभिशाप हो जाता है। आज विज्ञान ने ऐसे साधन बना दिये कि व्यक्ति जल में भी चल सकता है, आकाश में भी उड़ सकता है, समुद्र की गहराईयों में जाकर मोती भी चुन सकता है, पहले तो बड़ा आश्चर्य होता था कि मुनिमहाराज जमीन से ऊपर चल सकते हैं, मकड़ी के जाल पर चलें तो भी वह तंतु नहीं टूटता था, ऐसी-ऐसी ऋद्धियाँ होती हैं जिनके बारे में मनुष्य सोच भी नहीं पाता था कि यह सब कुछ वास्तविक है या कल्पना। आज से 2000 वर्ष पहले पंचमकाल के प्रारंभ में किसी ने नहीं सोचा कि व्यक्ति समुद्र में भी महल खड़ा कर देगा। यहाँ बैठकर अमेरिका लंदन तक बात भी कर लेगा, यह सब बातें केवल व्यक्ति के कल्पना का विषय था किन्तु विज्ञान ने इन सभी कल्पनाओं को साकार रूप दे दिया, विज्ञान ने वे सभी साधन लाकर उपस्थित कर दिये। किन्तु साधन मात्र प्राप्त करने से कोई सुखी नहीं होता है। जब-जब सदुपयोग करता है तब-तब सुख-शांति की अनुभूति करता है।

तो महानुभाव ! विज्ञान ने बाह्य शत्रुओं को नष्ट करने के लिए अस्त्र-शस्त्र दिये, विज्ञान ने ऐसे यंत्र बना दिये जिससे सब नष्ट हो

जाये। मात्र 2-8 व्यक्तियों का दिमाग विक्षिप्त हो जाये तो वे पूरी दुनिया को ही नष्ट कर सकते हैं, तो बात ये है विज्ञान ने शरीर को पुद्गल को नष्ट करने की कला तो सिखा दी किंतु वह विज्ञान आत्मा के शत्रुओं को नष्ट करने की कला न सिखा पाया और वह सिखाता है धर्म। क्रोध, मान, माया, लोभ, तृष्णा, ईर्ष्या, घृणा, वैमनस्य आदि विभाव परिणामों को दूर करने का जो मार्ग बताता है वह है धर्म। धर्म ऐसा जल है जिससे आत्मा का प्रक्षालन किया जाता है वह धर्म एक ऐसा रसायन है जिसको डालने से आत्मा परमात्मा बन जाती है। विज्ञान के माध्यम से शरीर की काया कल्प हो सकती है किन्तु धर्म के माध्यम से आत्मा का कायाकल्प हो जाया करता है। धर्म के माध्यम से बहिरात्मा अंतरात्मा बन जाती है और अंतरात्मा परमात्मा बन जाती है।

तो महानुभाव ! कहने का अभिप्राय यही है कि धर्म सर्वोपरि है अपने स्थान पर, किन्तु विज्ञान का महत्त्व भी कहीं कम नहीं है। विज्ञान भी अपने स्थान पर शत प्रतिशत सही है, विज्ञान को भी साथ लेकर चलना जरूरी है, तुम चलोगे तो अपने पैरों से किन्तु छोटी सी टॉर्च का भी बहुत बड़ा महत्व है अन्यथा अंधेरे में गिर जाओगे भटक जाओगे। महानुभाव ! विज्ञान भी अपने आप में महत्वपूर्ण है उसे कभी भी किसी भी काल में, किसी भी क्षेत्र में नकारा नहीं जा सकता। जो विज्ञान की महत्ता को नकार देते हैं वे अभी अंधकार में भटक रहे हैं, जिन्होंने धर्म की महत्ता को नकार दिया है विज्ञान की, भौतिकता की चकाचौंध में डूब रहे हैं वे भी आत्म शांति को प्राप्त नहीं कर सकते। तो विज्ञान के माध्यम से उस भौतिकता की चकाचौंध से अपनी आँखों को अंधा नहीं करना है और ऐसा भी नहीं करना कि धर्म के माध्यम से उपलब्ध साधना उग्ररूप धारण करके उसके द्वारा औदत्तपने से अहंकार को धारण कर ले, तो दोनों ही चीजें हमारे लिये खतरनाक हो सकती हैं यदि दुरुपयोग करते हैं तो।

आचार्यों ने लिखा है-

धर्म का दुरुपयोग करने से व्यक्ति नरक में जा सकता है, व्यवहार अनुकूल न रखने से दुर्गति, कुगति में जा सकता है, दु:खों को प्राप्त कर सकता है। दूसरी ओर विज्ञान का दुरुपयोग करने से व्यक्ति जीते जी नरक का अनुभव कर सकता है, जीते जी वह मरे के समान है। तो महानुभाव! धर्म ही हमारी चेतना की चेतना है, प्राणों का प्राण है, वह जीवंतता को प्रदान करने वाली प्राण वायु है, हमारे अस्तित्व की नींव है और विज्ञान को कहें तो विज्ञान उसकी बॉडी है वह हमारा बाह्य उपकरण है जो कि आवश्यक है। सिद्धान्त शास्त्रियों ने भी कहा है किसी भी कार्य में दो निमित्त होते हैं एक अंतरंग एक बहिरंग। बिना कारण के कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। यदि आप भी अपने जीवन को चिरकाल के लिये सुखी बनाना चाहते हैं शाश्वत सुख शांति प्राप्त करना चाहते हैं तो धर्म और विज्ञान दोनों को समान रूप से स्थान और अपनी आत्मा में शाश्वत बीजों का बीजारोपण करें। आप सभी लोग मोक्ष के पथ पर बढ़ें, शाश्वत शांति को प्राप्त कर सकें मैं आपके प्रति ऐसी मंगल भावना भाता हूँ।

'' शांतिनाथ भगवान की जय ''

जिन दर्शन

देखे बिना कोई भी क्रिया सम्यक् नहीं हो सकती, बिना दर्शन के कोई ज्ञान सम्यक् नहीं होता। या यूँ कहें बिना दर्शन के ज्ञान होता ही नहीं। दर्शन निर्विकल्प है इसलिये व्यवहार में कम देखा जाता है ज्ञान सविकल्प है इसलिये व्यवहार में ज्यादा देखा जाता है, इसलिये आत्मा के मुख्य गुणों की जब चर्चा की जाती है तो सबसे पहले ज्ञान को कहा जाता है फिर दर्शन को। ज्ञाता दृष्टा आत्मा का स्वभाव है, ''जानना देखना''। वास्तव में देखना पहले होता है जानना बाद में। बिना देखे-जानना सार्थक नहीं है। देखने का आशय स्वानुभूति, आत्मा से अनस्यूत संबंध, अपने आप में महासत्ता का अनुभव करना और जानने का आशय है अवांतर सत्ता का ज्ञान, एक-एक वस्तु की सत्ता को जानना।

महानुभाव ! वैसे भी सम्यक् दर्शन पहले होता है सम्यक् ज्ञान बाद में। देखना बहुत महत्वपूर्ण है, किन्तु बात ये है कि हमें क्या देखना है और क्या नहीं देखना ये ज्यादा महत्वपूर्ण है। संसार में ऐसे बहुत कम प्राणी हैं जो देख सकते हैं, एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय जीव के पास चक्षु नहीं हैं वे देख नहीं सकते। चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीव के पास चक्षु हैं वे देख सकते हैं। अचक्षु दर्शन एक इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सभी के पास है अवधिदर्शन अवधि ज्ञानियों के पास ही होता है और केवल दर्शन केवल ज्ञानियों के पास। तो चक्षु के माध्यम से देखने की बात हम कह रहे हैं कि चक्षु के माध्यम से वीतरागी मुद्रा को देखने की सामर्थ्य चतुरिन्द्रिय जीव, पंचेन्द्रिय जीवों के पास है।

संसार में ऐसे बहुत कम जीव हैं जो देख पाते हैं किन्तु उनमें भी बहुत कम जीव वे हैं जिन्हें ज्ञान हो कि हमें क्या देखना चाहिये, क्या

नहीं देखना चाहिये। देखना तो आप और हम सब जानते हैं किन्तु यह नहीं जान पाते कि हमें क्या देखना चाहिए, किसी की बुराई देखना चाहिए या अच्छाई, करनी का रूप देखना चाहिए या स्वरूप, बाह्य पुद्गल को देखना चाहिए या चेतना के वैभव को, वस्तु और व्यक्ति के विकारों को देखना है या उसके विश्वास को देखना है। आचार्य मानतुंग स्वामी जी देखने के संबंध में लिखते हैं-

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर द्युति-दुग्धसिन्धोः,
क्षारं जलं जल निधे रसितुं क इच्छेत्॥

हे भगवान् ! संसार में आप ही विलोकनीय हैं देखने के लायक तो आप ही हैं। संसारी प्राणी तो मूर्ख हैं जो लड़का और लड़की को देख रहे हैं, ये देखने की चीज नहीं है। देखने की चीज तो वह है जिसे अनादि काल से देखा ही नहीं वह है हमारी आत्मा का वैभव। अनादि काल से आज तक हम अपनी आत्मा के वैभव को देख नहीं पाये। दुनिया के सारे वैभव देखे किन्तु चेतना के वैभव को देखे बिना जीवन सफल और सार्थक कदापि नहीं है। चेतना का वैभव देखने के लिये आवश्यक है जिन्होंने चेतना का वैभव प्राप्त कर लिया है ऐसे व्यक्तित्व के दर्शन कर लेना।

आचार्य मानतुंग स्वामी भगवान आदिनाथ की स्तुति करते हुये कह रहे हैं। आपको बिना पलक झपकाये टकटकी लगाकर देखने से संसारी प्राणियों के नेत्र अन्य कहीं संतोष को प्राप्त नहीं होते। अभी तक तो तुमने आँख में आँख मिलाकर संसारी प्राणियों को देखा है, भगवान की आँखों में आँख डालकर नहीं देखा। अभी तुमने किसी से आँख लगाई है तो संसारी प्राणी से, कभी भगवान से आँख नहीं लगाई, यदि भगवान से एक बार आँख लगाई होती तो संसार में

परिभ्रमण नहीं करना पड़ता। वीतरागी से किया गया राग और वीतरागी से किया गया द्वेष निःसंदेह राग और द्वेष को बिताने वाला होता है, नष्ट करने वाला होता है।

हे प्रभु! संसार में आप ही देखने योग्य हैं किन्तु मैंने आज तक आपको ही नहीं देखा संसार के सब वैभव को देखा। मंदिर में आकर भी मैं मंदिर को देखता हूँ आपको कहाँ देख पाता हूँ। वेदी पर बैठे हुये आपको कहाँ देख पाता हूँ, मूर्ति को देख पाता हूँ मूर्ति कितनी सुंदर है श्याम पाषाण की है, स्वर्ण की, धातु आदि की मूर्ति है मैं इसमें ही उलझ जाता हूँ, मेरी दृष्टि वहीं तक ठहर जाती है उसके अंदर मूर्तिमान जो आपका स्वरूप है, समस्त कर्मों से रहित आपकी जो दशा है वहाँ तक मेरी दृष्टि नहीं पहुँच पाती। जिसकी दृष्टि एक बार वहाँ तक पहुँच गयी उसे फिर संसार के अन्य पदार्थ देखने की आवश्यकता नहीं रहती है। ''नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः'' संसारी प्राणियों के नेत्र अन्य कहीं संतोष को प्राप्त नहीं होते, अन्य कहीं संतुष्टि नहीं मिलती। संसार के सब प्राणियों को देखते हैं और देखकर भी अनदेखा करना पड़ता है, किन्तु आपको बिना देखे ही देखना पड़ता है। बिना देखे चैन नहीं पड़ती।

''तुम्हारे दर्श बिन बाबा, हमें न चैन पड़ती है''

बाबा के दर्शन के बिना भक्त को चैन नहीं पड़ती जैसे एक छोटा बालक जब तक अपनी माँ को नहीं देख लेता तब तक माँ के बिना वह रोता है तड़पता है। मेले में गया हुआ एक छोटा बालक माता-पिता की अंगुली पकड़े हुये है। उस बालक को मेले में बड़ा आनंद आ रहा है संयोग वशात् उस मेले की भीड़ में उसकी अंगुली छूट गयी और माँ-बाप आगे निकल गये। अब उस मेले में उसे जो आनंद आ रहा था। मिठाई की दुकान, कहीं सर्कस, कहीं कुछ-कहीं कुछ बड़ा आनंद आ रहा था। किन्तु जब अंगुली छूट गयी तो बालक

रोने लगा। वही मेला है, वही दुकानें, वही सब कुछ है अभी उन्हें देखकर हँस रहा था, मुस्कुरा रहा था, कूद रहा था बड़ा आनंद ले रहा था, अभी भी वही मेला है, मेला नहीं बदला, तुम भी नहीं बदले, तो हँसने के स्थान पर रोना कैसे? क्योंकि अभी तुम माता पिता की अंगुली पकड़े थे, उन्हें देख रहे थे, अब अंगुली छूट गयी अब माँ दिख नहीं रही। उस बालक को तब तक चैन नहीं पड़ता जब तक कि वह उसे मिल न जाये। ऐसे ही सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा को, भक्त को, बिना भगवान को देखे चैन नहीं पड़ता और भगवान जब मिल जाते हैं तो मानो उसे सब कुछ मिल गया। आप लोग पढ़ते हैं और संभव है कुछ उसकी गहराई में भी जाते होंगे कि बिना उनके कैसी बेचैनी होती है-

''तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन।
जन्म जरा मेरी हर्यो करो मोहि स्वाधीन॥''

महानुभाव ! जैसे पानी के बिना मछली तड़प जाती है, पानी में डालते ही उसे प्राण मिल जाते हैं, जल ही उसका जीवन है, ऐसे ही संयमी का जीवन संयम है, ज्ञानी का जीवन ज्ञान है, भक्त का जीवन भगवान है, ध्यानी को बिना ध्यान के चैन नहीं पड़ता, स्वाध्यायी को बिना स्वाध्याय के चैन नहीं पड़ता और दानी को दान के बिना चैन नहीं पड़ता ऐसे ही भक्त को भगवान के बिना चैन नहीं पड़ता। भगवान के दर्शन कर कहते हो जन्म जरा मेरी हर्यो हे भगवान ! मेरी जन्म जरा मृत्यु को नाश करने के लिये आप समर्थ हैं। तो क्या भगवान के दर्शन करने से जन्म जरा मृत्यु का नाश हो जाता है, तो पूजन किसलिये कर रहे हो? भईया पूजन तो आलम्बन है, भगवान के दर्शन से ही सब मिल जाता है।

जैसे आप किसी के यहाँ गये, उस व्यक्ति ने आपका मुस्कुराकर स्वागत किया तो आपको सब कुछ मिल गया। चाहे भले ही वह

आपका सम्मान बाद में करे या न करे। किन्तु यदि किसी द्वार पर आप गये और वह तुम्हें देखकर के मुँह मोड़ ले, बाद में तुम्हारे सिर पर सोने का ताज भी पहना दे तो तुम कहोगे सोने का ताज भी चुभ रहा है। दृष्टि में कड़वाहट है, दृष्टि में विकृत भाव है, ग्लानि का भाव है, दृष्टि में उपेक्षा का भाव है, दृष्टि में तिरस्कार, अपमान का भाव है तो सृष्टि में सम्मान भी हो तो बेकार है। दृष्टि का सम्मान सबसे बड़ा सम्मान है किसी को सम्मान की निगाह से देखो तो बस सब कुछ मिल गया। माँ बेटे को कोई ताज नहीं देती है, कोई ताजमहल नहीं देती और सम्पत्ति नहीं देती, मुस्कुराकर माँ अपने बेटे की ओर देख लेती है बेटा समझता है मुझे तीन लोक का राज्य मिल गया। महानुभाव ! दृष्टि में सृष्टि है दृष्टि में विकार नहीं है तो मैं समझता हूँ कहीं भी विकार नहीं है दृष्टि में विकार है तो सृष्टि कितनी भी निर्विकारी बनी रहे किन्तु हम निर्विकारी न हो सकेंगे। तो दर्शन करने से जन्म जरा मृत्यु का नाश होता है आचार्य पूज्यपाद स्वामी कहते हैं-

जन्म जन्म कृतं पापं जन्म कोटि समार्जितम्।
जन्म मृत्यु जरा मूलं हन्यते जिन वंदनात्॥

दर्शन पाठ में, समाधि भक्ति में भी है जिनदर्शनात्, जिन वन्दनात्–जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से ''जन्म जन्म कृतं पापं'' जो पाप आपने जन्मांतर में एकत्र कर लिये हैं, इकट्ठे करते जा रहे हैं कि बाद में देखेंगे। कई बार क्या होता है, जब आप छोटे थे, बचपन में जब आपको पैसे मिलते थे तो आप क्या करते थे पैसे इकट्ठे करते थे। गुल्लक में क्यों रखें क्योंकि बाद में भोगेंगे। बाग में गये फल तोड़े तो क्या करोगे इकट्ठे कर लो बाद में शांति से खायेंगे। ऐसे ही जन्म-जन्म कृतं पापं आपने जन्मजन्मांतर में क्या इकट्ठा किया है सम्यक्दृष्टि धर्मात्मा तो पुण्य को इकट्ठा करता है तुमसे कोई पूछे सुबह-सुबह मंदिर क्यों जाते हो? तो आप कहोगे पुण्य के लिये।

पूजन, स्वाध्याय, दान आदि क्यों करते हो? बोले पुण्य के लिये। इतने सारे पुण्य का क्या करोगे? बोले आवश्यकता है, बाद में चैन से पुण्य के फल से अरिहंत अवस्था प्राप्त करके और पुण्य को भी छोड़कर सिद्ध अवस्था प्राप्त करके चैन से भोगेंगे।

तो महानुभाव ! अब हमें पुण्य इकट्ठा करना है किन्तु पाप पहले इकट्ठे कर चुके हैं उन पापों के ढेर को जलाने की अग्नि है जिनदर्शन, जिनभक्ति, जिनवंदना। कर्मों को इकट्ठा करने में चाहे वर्षों लगे हों, चाहे शताब्दियाँ लगी हों, चाहे सागरों का समय लगा हो, चाहे करोड़ों भव लगे हों किन्तु नष्ट करने में एक क्षण भी पर्याप्त हो सकता है।

एक वृक्ष सौ साल का हो चाहे हजार साल का या और पुराना हो उस वृक्ष के बनने में हजारों वर्ष लग गये किन्तु उसे धराशाही करने के लिए कुछ घंटों, मिनटों, कुछ क्षणों का समय पर्याप्त है। ऐसे ही जो कर्म हमने संचय करे हैं संचित किये पाप कर्मों को हमें नष्ट करना है तो पुण्य के जनक जिनेन्द्र प्रभु के अवलोकन करने के माध्यम से पाप भाग जाते हैं। और पुण्य को यदि एक साथ नष्ट करना हो तो किसी एक पाप का सहारा ले लो, किसी एक पाप का सहारा लेते ही सभी पुण्यों पर पानी फेरा जा सकता है।

तो महानुभाव ! आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने कहा-हे भगवान्! मैंने जन्म-जन्म में पापों का अर्जन किया है, उस जन्म जरा मृत्यु का मूल जिनेन्द्र प्रभु के दर्शन मात्र से नष्ट हो जाता है, पाप टिक नहीं पाता। जैसे किसी गुफा में हजारों, करोड़ों, खरबों वर्षों से अंधकार व्याप्त था, उस गुफा में एक चट्टान टूट जाने से एक छेद हो गया तो सूर्य का प्रकाश अंदर आ गया अंधकार को भगाने में कितना समय लगा, कोई समय नहीं लगा चाहे अंधकार कितना ही पुराना था अंदर जैसे ही सूर्य की किरण आई अंधकार भाग गया, ऐसे ही भगवान के दर्शन

करते ही चित्त में जो श्रद्धा का भाव होता है, हमारे अंतरंग में जो विशुद्धि पैदा होती है हमारे अंतरंग में जो आनंद की अनुभूति होती है उस आनंद की अनुभूति से असंख्यात भवों के कर्मों का भी क्षय किया जा सकता है।

रागद्वेष से रहित वीतरागी मुद्रा को देखने में जो आनंद आता है उस आनंद से जितने पुण्य का संचय होता है, जितने पापों का क्षय होता है उतना क्षय अन्य किसी कार्य से नहीं होता है। तो आचार्य पूज्यपाद स्वामी गारंटी दे रहे हैं-कि केवल दर्शन मात्र से ही संसार के सभी रोगों से मुक्ति मिल सकती है। केवल दर्शन मात्र से ही जन्म-जरा-मृत्यु का नाश हो सकता है। केवल दर्शन करने मात्र से भी संसार का प्राणी दर्शनीय बन जाता है, तीन लोक का नाथ पूज्यनीय बन जाता है।

एकापि समर्थेयं जिनभक्ति दुर्गतिं निवारयितुं।
पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः॥

दुर्गति के निवारण के लिए, पुण्य से पूरित करने के लिए और मुक्ति श्री के वरण के लिए एक जिनभक्ति ही समर्थ है। इसलिये आचार्य मानतुंग स्वामी जी कह रहे थे-हे प्रभु ! आपको देखकर अब बस किसी अन्य को देखने का मन नहीं करता, क्यों नहीं मन करता? जिस व्यक्ति ने एक बार मिश्री की डली मुँह में रख ली हो, उसे खाकर के उस व्यक्ति से कहो यह गुड़ रखा है इसमें थोड़ी सी धूल मिल गयी है खा लो, तो वह व्यक्ति-हाथ जोड़ेगा, कहेगा क्षमा करो भाई। अब मिश्री खाकर के गुड़ खाने की इच्छा नहीं हो रही। जिसने क्षीर सागर का निर्मल, धवल, शीतल, मिष्ट जल पी लिया हो ऐसा व्यक्ति खारा पानी क्यों पीना चाहेगा ''कालोदधि का खारा पानी पीना चाहे कौन पुमान'' जो खीर खा रहा है उससे कहो-बाजरे की खट्टे मट्ठे की रावड़ी तो खा ले तो वह कहेगा, भईया क्षमा करो अब मैं इसको नहीं खा सकता।

जैसे सुकुमाल, इतने सुकुमार थे कि शाम को उनके लिये कमल पुष्प में चावल के दाने रख दिये जाते थे, प्रातःकाल उन्हें निकाला जाता, पुनः उनका भात बनाया जाता था। जब राजा श्रेणिक उनसे मिलने के लिये आये तो उनकी माँ ने उसमें चावल के दाने मिलाकर भात बना दिया। सुकुमाल उन चावलों में से छाँट-छाँट कर एक-एक चावल को खा रहा है, क्योंकि जो प्रतिदिन उत्तम भोजन करने वाला है वह जघन्य भोजन नहीं कर सकता। आप सोचते होंगे तीर्थंकर प्रभु दीक्षा के पहले मध्यलोक का कुछ भी नहीं खाते, एक बूंद पानी भी यहाँ का नहीं पीते, एक अन्न का दाना भी नहीं खाते, कोई वस्त्र आभूषण भी ग्रहण नहीं करते, इन्द्र ही सब व्यवस्था करता है। जो उत्तम इन्द्र अहमिन्द्र बने फिर यहाँ आकर तीर्थंकर बने, अमृत का आहार करने वाले महापुरुष अब यहाँ का भोजन कैसे करें? वह निकृष्ट आहार नहीं कर सकते और दीक्षा के उपरांत ऐसी ऋद्धियाँ हो जाती हैं कि चाहे आहार कुछ भी लें रूखा-सूखा हाथों में आते ही वह स्वयं अमृत जैसा बन जाता है। तो महानुभाव! जिनेन्द्र भगवान का दर्शन स्वयं आत्मा का संस्पर्शन है।

उनका दर्शन, सिद्ध भूमि का स्पर्शन है, प्रभु का दर्शन आत्मा के समग्र वैभव का दर्शन है, वह दर्शन पापों का विकर्षण है और पुण्य का आकर्षण है इसलिये आपके जीवन में जिनदर्शन प्रतिक्षण बना रहे, चाहे जिनेन्द्र भगवान सामने हों अथवा नहीं हों, जिनेन्द्र भगवान सामने हों तब भी आँख खोलकर देखो, नहीं हों तो भगवान को आँख बंद कर देखो, जब तक भगवान तुम्हें दिखते हैं तब तक भूल से भी तुम्हारे जीवन में पाप चिपक नहीं पायेंगे। जिनेन्द्र भगवान ओझल हो जायेंगे तो पाप तुम्हारे ऊपर आक्रमण कर सकता है इसलिये जब भी खाली समय मिले तो जिनेन्द्र प्रभु को देखते रहो, तुम्हारा कोई बाल बांका न कर सकेगा, यही कल्याण का मार्ग है, आत्म कल्याण का

सूत्र है।

आपको यही आशीर्वाद देता हूँ कि आप जिन दर्शन करते-करते शायद निज दर्शन को प्राप्त कर लें, दर्शन करते-करते अपनी आत्मा के समस्त प्रदेशों का स्पर्शन कर लें और अपनी आत्मा के समग्र वैभव का संस्पर्शन कर लें।

''शांतिनाथ भगवान की जय''

नोट